PG HN S2-01 (DSC)

TWO YEAR MASTER'S DEGREE COURSE

(CBCS in Accordance with NEP2020)

SEMESTER II

हिंदी साहित्य का इतिहास

हिंदी

Padmanath Gohainbaruah School of Humanities

KRISHNA KANTA HANDIQUI STATE OPEN UNIVERSITY

विषय विशेषज्ञ

प्रोफ़ेसर दिलीप कुमार मेधी, हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय, असम

प्रोफ़ेसर अमूल्य बर्मन, हिंदी विभाग, कॉटन विश्वविद्यालय (सेवानिवृत विभागाधक्ष्य)

प्रोफ़ेसर भूषण पाठक, अध्यक्ष्य बी.एस.कॉलेज, हाउली, बरपेटा

पाठ्यक्रम समन्वयक : डॉ. प्रांजल कुमार नाथ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय

एसएलएम् तैयारी टीम

इकाइयाँ	योगदानकर्ताओं के नाम
1–2,10	डॉ. प्रांजल कुमार नाथ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय
3.	डॉ. नंदिता दत्त, सहायक अध्यापक, नॉर्थ लखीमपुर विश्वविद्यालय
4–7	डॉ. दीपक गुप्ता, सहायक अध्यापक, जी.एल.ची महाविद्यालय, बरपेटा
8.	रुबिमणि दास, शोधार्थी, गौहाटी विश्वविद्यालय
9.	डॉ. भायोलेट दत्त, सहायक अध्यापक, नगाँव विश्वविद्यालय
11–14	अनन्या दास, शोधार्थी, असम विश्वविद्यालय, दिफू कैंपस

Editors

Content : डॉ. प्रांजल कुमार नाथ, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम

Language: डॉ. उज्जवल डेका बरुआ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम

Structure & Format : डॉ. अब्दुल लतीफ, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम

October, 2024

This Self Learning Material (SLM) of the Krishna Kanta H andiqui State Open University is made available under a Creative Commons Attribution-Non Commercial-Share Alike y.0 License (international) http://creativecommons.org/licenses/by-nc-sa/y.0/

ISBN:

Printed and published by Registrar on behalf of the Krishna Kanta Handiqui State Open University.

CONTENT

Page No

इकाई 1 रीतिकाल 9-22
'रीति' शब्द की व्याख्या, रीतिकाल की पृष्ठभूमि, रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ

इकाई 2 रीतिकाल के कवियों का वर्गीकरण 23-31
रीतिकाल के नामांकन, रीतिकालीन कवियों का वर्गीकरण, रीतिकालीन काव्य के वर्गीकरण

इकाई 3 रीतिकालीन गद्य साहित्य और उपलब्धियाँ 32-40
रीतिकालीन गद्यसाहित्य, रीतिकालीन उपलब्धियाँ

इकाई 4 हिंदी साहित्य का आधुनिक काल 41-48
आधुनिक काल की अवधारणा, उपविभाग, परिस्थितियाँ

इकाई 5 भारतेन्दु युग (पुनर्जागरण काल) 49-62
भारतेंदु युग, प्रमुख प्रवृत्तियाँ और विशेषताएँ, प्रमुख कवि

इकाई 6 द्विवेदी युग (जागरण सुधार काल) 63-73
द्विवेदी युग और इसकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ, प्रमुख कवि, अन्य कवि

इकाई 7 छायावाद 74-87
छायावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ, छायावादी कवियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

इकाई 8 प्रगतिवाद 88-93
प्रगतिवादी काव्य की विशेषताएँ, प्रमुख प्रगतिवादी कवि और उनकी रचनाएँ

इकाई 9 प्रयोगवाद 94-103
प्रयोगवाद से तात्पर्य, प्रयोगवाद की विशेषता, प्रयोगवाद के प्रमुख कवि और रचनाएँ

इकाई 10 नयी कविता 104-112
नयी कविता से तात्पर्य, नयी कविता की प्रमुख प्रवृतियाँ एवं विशेषताएँ

इकाई 11 नाटक साहित्य एवं एकांकी साहित्य 113–124
नाटक साहित्य का स्वरूप, उद्भव एवं विकास, एकांकी साहित्य का स्वरूप, उद्भव एवं विकास

इकाई 12 उपन्यास एवं कहानी साहित्य 125–138
उपन्यास साहित्य का स्वरूप, उद्भव एवं विकास, कहानी साहित्य का स्वरूप उद्भव एवं विकास

इकाई 13 निबंध एवं आलोचना 139–154
निबंध साहित्य का स्वरूप, उद्भव एवं विकास, आलोचना साहित्य का स्वरूप, उद्भव एवं विकास

इकाई 14 गद्य साहित्य की अन्य विधाएँ 155–162
संस्मरण तथा रेखाचित्र, जीवनी साहित्य, आत्मकथा, यात्रावृतांत, रिपोर्ताज

विषय परिचय

कृष्ण कांता हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय (KKHSOU) के सभी पाठ्यक्रम की तरह हिंदी भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, इसमें **डीएससी 4 हिंदी साहित्य का इतिहास (रीतिकाल और आधुनिक काल)** से सम्बंधित पेपर प्रस्तुत किया गया है- हिंदी साहित्य में रीतिकाल को एक महत्वपूर्ण काल माना जाता है। इस काल के काव्य की प्रमुख धारा का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ। रीतिकाल समृद्धि और विलासिता का काल है। साधना के काल भक्तियुग से यह इसी बात में भिन्नता रखता है कि इसमें कोरी विलासिता ही उपास्य बन गयी, वैराग्यपूर्ण साधना का समादर न रहा। सजाव-श्रृंगार की एक अदम्य लिप्सा इस युग के साहित्य में प्रतिबिम्बित होती है।

रीतिकाल के पश्चात आधुनिक काल का दौर आता है, जिसमें नवीनता, बौद्धिकता, देशप्रेम, प्रतीकात्मकता उपमानों की नवीनता आदि इसकी मुख्य विषय बना है। आधुनिक काल अपने ज्ञान विज्ञान और प्रवृत्तियों के कारण मध्यकाल से अलग प्रतीत हुए, यह काल औद्योगीकरण, नगरीकरण और बौद्धिकता से सम्बद्ध है, जिसमें नवीन आशाएँ उभरी और भविष्य का नया स्वप्न देखा जाने लगा। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए रीतिकाल और आधुनिक काल से संबंधित 14 इकाईयाँ आपके स्नातकोत्तर के द्वितीय छमाही में दिया गया है।

इकाई 1- रीतिकाल, इकाई की शुरुआत उद्देश्य से होते हुए प्रस्तावना, 'रीति' शब्द की व्याख्या, रीतिकाल की पृष्ठभूमि, दरबारी पृष्ठभूमि, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सामाजिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, धार्मिक पृष्ठभूमि, साहित्यिक पृष्ठभूमि, रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ इत्यादि पर चर्चा हुई हैं। अंतिम में सारांश, प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा), अधिक जानने के लिए पढ़े एवं कुछ अभ्यास प्रश्न दिया गया है। जिसे पढ़कर शिक्षार्थी रीतिकाल के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे।

इकाई 2-रीतिकाल के कवियों का वर्गीकरण, इस इकाई के प्रथम रूपरेखा की तहत उद्देश्य को दर्शाया गया है साथ ही प्रस्तावना को संक्षेप रूप देते हुए रीतिकाल के नामांकन, रीतिकालीन कवियों का वर्गीकरण, रीतिकालीन काव्य के वर्गीकरण, रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त इत्यादि पर विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया हैं। सारांश द्वारा अंतिम रूप देते हुए प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा), अधिक जानने के लिए पढ़े एवं कुछ अभ्यास प्रश्न इकाई के अंत में दिया गया है। जिसे पढ़कर शिक्षार्थी रीतिकाल के कवियों के बारे में गहराई से जानेगे एवं प्रत्येक प्रश्न का उत्तर आसानी से दें पाएंगे।

इकाई-3 रीतिकालीन गद्य साहित्य और उपलब्धियाँ, प्रत्येक इकाई की तरह इस इकाई की भी अपनी रूपरेखा है। जिसके अंतर्गत उद्देश्य, प्रस्तावना, रीतिकालीन गद्यसाहित्य, ब्रजभाषा-गद्य, खड़ीबोली-गद्य, दक्खिनी गद्य, राजस्थानी गद्य, अवधी गद्य, रीतिकालीन उपलब्धियाँ इत्यादि पर विस्तारपूर्वक चर्चा हुई है। इकाई में सारांश, प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा), अधिक जानने के लिए पढ़े एवं अंतिम में अभ्यास प्रश्न लिखा गया है। जिसे पढ़कर शिक्षार्थी इस इकाई के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे एवं दिए गए प्रश्न को सुलझा सकेंगे।

इकाई -4 हिंदी साहित्य का आधुनिक काल, ऊपर के तीन इकाईयों में रीतिकाल का अध्ययन करने के बाद आप नीचे की इकाइयों में आधुनिक काल के बारे में पढ़ेंगे इस इकाई में आप उद्देश्य एवं प्रस्तावना के साथ- साथ आधुनिक काल की अवधारण, उपविभाग, परिस्थितियाँ इत्यादि को जान पाएंगे। इकाई में सारांश, प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा), अधिक

जानने के लिए पढ़े एवं अंतिम में अभ्यास प्रश्न दिया गया है। जिसे पढ़कर शिक्षार्थी इस इकाई के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे एवं दिए हुए प्रश्न का हल निकालने में सक्षम होंगे।

इकाई -5 भारतेन्दु युग (पुनर्जागरण काल), आधुनिक काल को समझने के दौरान आप इस इकाई में भारतेन्दु युग के बारे में जानेंगे। सबसे पहले तो उद्देश्य की रूपरेखा को जानने के बाद, प्रस्तावना में संक्षेप रूप को दर्शाया गया है। जिसके बाद भारतेंदु युग में श्रृंगारिकता, भक्तिभावना, प्रकृतिचित्रण, समस्यापूर्ति, राजभक्ति एवं देशभक्ति, राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक समस्याओं का चित्रण, जनजागरण एवं विद्रोह का आह्वान इस काल के प्रमुख कवि इत्यादि पर चर्चा की गयी है। प्रत्येक इकाइयों की तरह इस इकाई में भी सारांश, प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा), अधिक जानने के लिए पढ़े एवं अंतिम में अभ्यास प्रश्न को दर्शाया गया है। जिससे शिक्षार्थी इन प्रश्न का हल आसानी से निकाल सकेंगे।

इकाई 6- द्विवेदी युग (जागरण सुधार काल) - भारतेंदु युग के बाद हम इस इकाई में द्विवेदी युग के बारे में चर्चा की हैं। द्विवेदी युग की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता गद्य और पद्य की भाषा का एक होना है। इस युग में कविता की प्रधान भाषा भी खड़ीबोली हो गई। इसी युग में आधुनिक हिन्दी कहानी का सूत्रपात हुआ। गद्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा निबन्ध द्विवेदी युग में परिष्कृत और परिमार्जित हुई। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए प्रथम उद्देश्य को आपके समक्ष रखा गया। इसके बाद द्विवेदी युग की प्रस्तावना, द्विवेदी युग और इसकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ, नैतिकता और आदर्श का आग्रह, प्रकृति और प्रेम, राष्ट्र की वर्तमान स्थिति का वर्णन, प्राचीन-अतीत का गौरवगान, राष्ट्रीय चेतना, प्रमुख कवि, अन्य कवि इत्यादि का उल्लेख इस इकाई में किया गया है। साथ ही सारांश, प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा), अधिक जानने के लिए पढ़े एवं अंतिम में अभ्यास प्रश्न लिखा गया है। जिसे पढ़कर शिक्षार्थी की द्विवेदी युग के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे एवं विभिन्न प्रश्नों का हल निकाल पाएंगे।

इकाई 7 छायावाद-हिन्दी साहित्य - के आधुनिक चरण मे द्विवेदी युग के पश्चात हिन्दी काव्य की जो धारा विषय वस्तु की दृष्टि से स्वच्छंद प्रेम भावना, प्रकृति में मानवीय क्रियाकलापों तथा भाव-व्यापारों के आरोप और कला की दृष्टि से लाक्षणिकता प्रधान नवीन अभिव्यंजना-पद्धति को लेकर चली, उसे छायावाद का नाम दिया गया। उद्देश्य एवं प्रस्तावना लिखने के बाद छायावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ, छायावादी कवियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व इत्यादि पर चर्चा करते हुए सारांश के साथ प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा), अधिक जानने के लिए पढ़े एवं अंतिम में अभ्यास प्रश्न दिया गया है। जिसे पढ़कर शिक्षार्थी इस इकाई के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे एवं दिए हुए प्रश्नों का हल निकाल पाएंगे।

इकाई 8- प्रगतिवाद - प्रगतिवादी कवियों ने पूंजीवादी व्यवस्था, सामाजिक रूढ़ियों, दबंगों द्वारा कमजोर वर्गों के शोषण के विरुद्ध थे। वे इन बुराइयों का नाश करने के लिए अपनी कविताओं के माध्यम से विद्रोह का स्वर मुखरित करते थे। नारी उत्थान की बात — प्रगतिवादी कवियों का विश्वास था कि श्रमिक वर्ग तथा अन्य कमजोर वर्गों की तरह नारी भी समाज में शोषित है। इस इकाई को पढ़ने के बाद जो उद्देश्य प्राप्त हुआ है, उनको सर्वप्रथम लिखा गया है। फिर प्रगतिवाद से संबंधित प्रस्तावना, उद्देश्य, प्रगतिवादी काव्य की विशेषताएँ, प्रमुख प्रगतिवादी कवि और उनकी रचनाएँ इत्यादि। प्रत्येक इकाइयों की तरह इस इकाई में भी सारांश, प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा), अधिक जानने के लिए पढ़े एवं अंतिम में अभ्यास प्रश्न को दर्शाया गया है। जिससे शिक्षार्थी इन प्रश्नों का हल निकाल सकें।

इकाई 9- प्रयोगवाद - प्रयोगवादी व्यक्तिवाद छायावादी व्यक्तिवाद से अलग है। प्रयोगवादी घोर व्यक्तिवादी है। उनका

व्यक्तिवाद दो सीमांतों के बीच फैला हुआ है। उनमें से एक सीमांत है मध्यवर्गीय परिवेश के प्रति मध्यवर्गीय कवि का वैयक्तिक असंतोष और दूसरा सीमान्त है, जन–जागरण से डरे हुए कवि की आत्मरक्षा की भावना ही प्रयोगवाद को दर्शाता है। इकाई के अंतर्गत उद्देश्य, प्रस्तावना, प्रयोगवाद से तात्पर्य, प्रयोगवाद की विशेषता, प्रयोगवाद के प्रमुख कवि और रचनाएँ अंतिम में सारांश, प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा), अधिक जानने के लिए पढ़े एवं अंतिम में अभ्यास प्रश्न दिया गया है। जिसे पढ़कर शिक्षार्थी इस इकाई के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे एवं दिए हुए प्रश्नों का हल निकालने में सक्षम होंगे।

इकाई 10– नयी कविता – हिंदी साहित्य के इतिहास में नई कविता मानव जीवन को विशेष महत्व देते है। क्षणवाद की प्रधानता नई कविता में मनुष्य के जीवन के प्रत्येक क्षण को महत्व दिया गया है। प्रयोगों में नवीनता नई कविताओं में पुराने भावों और शिल्प विधानों के स्थान पर नवीन भावों और शिल्प विधानों को प्रस्तुत किया गया है। इकाई के शुरुआत में उद्देश्य एवं प्रस्तावना को दर्शाते हुए नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएँ इत्यादि पर चर्चा हुई हैं। इकाई के अंत में सारांश प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा), अधिक जानने के लिए पढ़े एवं अंतिम में अभ्यास प्रश्न दिया गया है। जिसे पढ़कर शिक्षार्थी इस इकाई के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे एवं दिए हुए प्रश्नों का हल निकालने में सक्षम होंगे।

इकाई 11 नाटक साहित्य एवं एकांकी साहित्य – नाटक साहित्य की वह दृश्य विधा है, जिसमें अभिनय, नृत्य, संवाद, आकृति, वेशभूषा और संगीत के माध्यम से अलौकिक आनंद की अनुभूति होती है। एकांकी में केवल एक ही मुद्दा है, इसमें किसी व्यक्ति, घटना या घटना का वर्णन नहीं है, बल्कि उसके एक भाग का वर्णन किया गया है। नाटक दृश्य काव्य का वृहद रूप है। एकांकी दृश्य का लघु रूप है। इन सारी बातों को ध्यान में रखते हुए उद्देश्य एवं प्रस्तावना लिखा गया हैं। नाटक साहित्य का उद्भव एवं विकास, नाटक का उद्भव, नाटक का विकास, एकांकी साहित्य का उद्भव एवं विकास, एकांकी का उद्भव, एकांकी का विकास का उल्लेख इस इकाई में किया गया। इकाई के अंत में सारांश प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा), अधिक जानने के लिए पढ़े एवं अंतिम में अभ्यास प्रश्न दिया गया है। जिसे पढ़कर शिक्षार्थी इस इकाई के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे एवं दिए हुए प्रश्नों का हल निकालने में सक्षम होंगे।

इकाई 12– उपन्यास एवं कहानी साहित्य – हिंदी कथा साहित्य के अंतर्गत गद्य की दो विधाओं की रूपरेखा इस इकाई में किया गया– 'उपन्यास' और 'कहानी'। इसके अंतर्गत शिक्षार्थि को उपन्यासों और कहानियों के संदर्भ के अनुसार जोड़कर पढ़ने का प्रयास किया गया है। तथा कुछ प्रमुख रचनाकारों तथा रचनाओं से अवगत करने का प्रयास इस इकाई में किया गया है। सबसे पहले उद्देश्य एवं प्रस्तावना लिखा जायेगा। साथ ही उपन्यास साहित्य का उद्भव एवं विकास, उपन्यास का उद्भव, उपन्यास का विकास, कहानी साहित्य का उद्भव एवं विकास, कहानी का उद्भव, कहानी का विकास इत्यादि का उल्लेख इस इकाई में किया गया हैं। प्रत्येक इकाइयों की तरह इस इकाई में भी सारांश, प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा), अधिक जानने के लिए पढ़े एवं अंतिम में अभ्यास प्रश्नों को दर्शाया गया है। जिससे शिक्षार्थी इन प्रश्नों का हल निकाल सके।

इकाई 13– निबंध एवं आलोचना – हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग में भारतेन्दु और उनके सहयोगियों से निबन्ध लिखने की परम्परा का आरम्भ होता है। गद्य की कई विधाओं का प्रचलन भारतेन्दु से होता है। उनमें से निबंध और आलोचना भी एक है। यह इस बात का प्रमाण है कि गद्य और उसकी विधाएँ आधुनिक मनुष्य के स्वाधीन व्यक्तित्व के अधिक अनुकूल हैं। इन गद्य विधाओं को ध्यान में रखते हुए इकाई की शुरुआत उद्देश्य एवं प्रस्तावना से आरंभ होता हैं।

इकाई में हम निबंध साहित्य का उद्भव एवं विकास, निबंध का उद्भव, निबंध का विकास, आलोचना साहित्य का उद्भव एवं विकास, आलोचना का उद्भव, आलोचना का विकास इत्यादि पर चर्चा हुई है। इकाई में सारांश, प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा), अधिक जानने के लिए पढ़े एवं अंतिम में अभ्यास प्रश्नों लिखा गया है। जिसे पढ़कर शिक्षार्थी इस इकाई के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे एवं दिए हुए प्रश्न का हल निकालने में सक्षम होंगे।

इकाई 14–गद्य साहित्य की अन्य विधाएं – यह अंतिम इकाई है जिसमें उद्देश्य एवं प्रस्तावाना को दर्शाते हुए गद्य के अन्य विधाएं अर्थात नवीन विधाओं में गद्यगीत, रेखाचित्र, संस्मरण, इण्टरव्यू, यात्रावृत, आत्मकथा, जीवनी, पत्र, रिपोर्ताज आदि में से कुछ का उल्लेख इस इकाई में की हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको सबसे पहले गद्य साहित्य की अन्य विधाएं के उद्देश्य का पता चल पायेगा, प्रस्तावना लिखते हुए हम संस्मरण तथा रेखाचित्र, जीवनी साहित्य, आत्मकथा, यात्रावृतांत, रिपोर्ताज इत्यादि पर चर्चा करेंगे। प्रत्येक इकाइयों की तरह इस इकाई में भी सारांश, प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा), अधिक जानने के लिए पढ़े एवं अंतिम में अभ्यास प्रश्नों को दर्शाया गया है। जिससे शिक्षार्थी इन प्रश्न का हल निकाल पाएंगे।

प्रत्येक इकाई को पढ़ते समय, आप दाएँ तरफ बने कुछ टेक्स्ट बॉक्स भी देख सकते हैं, जिसमें कुछ कठिन शब्दों और अवधारणाओं को समझने में आपकी मदद करने के लिए शामिल किया गया है। प्रत्येक इकाई में 'अपनी प्रगति जांचें' शीर्षक से कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न को अभ्यास प्रश्न के अतिरिक्त शामिल किया गया है और प्रत्येक प्रश्न के उत्तर का रूपरेखा 'प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)' शीर्षक से सारांश के बाद प्रस्तुत किया गया है। इसका उद्देश्य विद्यार्थी में नए–नए प्रश्न और उन प्रश्नों के समाधान के लिए आत्मविश्वास पैदा करना है। इससे विद्यार्थी इकाई के महत्वपूर्ण तथ्यों से आसानी से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

इसके अतिरिक्त सभी इकाई के अंत में 'अधिक जानने के लिए पढ़ें शीर्षक से कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकों की सूची दी गयी है, जो प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अत्यावश्यक है। विषय की गहरी जानकारी के लिए सारी पुस्तकें महत्वपूर्ण हैं।

इकाई 1 रीतिकाल

इकाई की रुपरेखा

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 'रीति' शब्द की व्याख्या
1.4 रीतिकाल की पृष्ठभूमि
  1.4.1 दरबारी पृष्ठभूमि
  1.4.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
  1.4.3 सामाजिक पृष्ठभूमि
  1.4.4 सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
  1.4.5 धार्मिक पृष्ठभूमि
  1.4.6 साहित्यिक पृष्ठभूमि
1.5 रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ
1.6 सारांश
1.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
1.8 अधिक जानने के लिए पढ़े
1.9 अभ्यास प्रश्न

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप-

- हिंदी साहित्य के रीतिकाल के बारे में आपको पता चलेगा।
- रीतिकाल के पृष्ठभूमियों के बारे में ज्ञान प्राप्त होगा।
- रीतिकालीन प्रवृतियों के बारे में जानेंगे।

1.2 प्रस्तावना

सन् 1700 ई. के आस-पास हिंदी कविता में एक नया मोड़ आया। इसे विशेषत: तात्कालिक दरबारी संस्कृति और संस्कृत साहित्य से उत्तेजना मिली। संस्कृत साहित्यशास्त्र के कतिपय अंशों ने उसे शास्त्रीय अनुशासन की ओर प्रवृत्त किया। हिंदी में रीति या काव्यरीति शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र के लिए हुआ था। इसलिए काव्यशास्त्रबद्ध सामान्य सृजन प्रवृत्ति और रस, अलंकार आदि के निरूपक बहुसंख्यक लक्षण ग्रंथों को ध्यान में रखते हुए इस समय के काव्य को रीतिकाव्य कहा गया। इस काव्य की शृंगारी प्रवृत्तियों की पुरानी परंपरा के स्पष्ट संकेत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी और हिंदी के आदिकाव्य तथा कृष्णकाव्य की शृंगारी प्रवृत्तियों में मिलते हैं। रीतिकाल को समृद्धि और विलासिता का

काल कहा जाता है। रीतिकाल, भक्तिकाल से इस बात में भिन्नता रखता है कि इसमें कोरी विलासिता ही उपास्य बन गयी, वैराग्यपूर्ण साधना का यहाँ समादर न रहा। सजीव-श्रृंगार की एक अदम्य लिप्सा इस युग के साहित्य में प्रतिबिम्बित हुई। रीति-काव्य के विकास में तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वस्तुत: ये परिस्थितियाँ ही उल्लेखित प्रकार के काव्य सर्जन के लिए एक अनुकूल वातावरण दिया। हिन्दी के रीतिशास्त्र का आधार पूर्ण रूप से संस्कृत काव्यशास्त्र है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हिन्दी में रीतिशास्त्र लिखने वाले प्रत्येक लेखक ने संस्कृत काव्यशास्त्र का पूरा अध्ययन किया था अथवा किसी अन्य ग्रन्थ को पूर्णत: हिन्दी में उतारा था। इस काल की अपनी निजी विशेषताएँ हैं। नीचे 'रीति' शब्द के तात्पर्य को अच्छी तरह समझ लेते है।

1.3 'रीति' शब्द की व्याख्या

'रीति' शब्द 'रीड' धातु के साथ 'क्ति' प्रत्यय मिलकर बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है प्रणाली, पद्धति अथवा मार्ग। रीति शब्द संस्कृत के काव्यशास्त्रीय रीति से भिन्न अर्थ रखता है। संस्कृत साहित्य में रीति को काव्य की आत्मा मानने वाला एक सिद्धान्त है, जिसका प्रतिपादन आचार्य वामन ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकारसूत्र' में किया था- ''रीतिरात्मा काव्यस्य''। मगर इससे भिन्न रूप से रीति को आधार मानकर इस काल में काव्य रचता गया। इस प्रकार रीतिकाल का अर्थ हुआ- ऐसा काव्य जो अलंकार, रस, गुण, ध्वनि, नायिका भेद आदि की काव्यशास्त्रीय प्रणालियों के आधार पर रचा गया हो। इनके लक्षणों के साथ या स्वतंत्र रूप से इनके आधार पर काव्य लिखने की पद्धति ही रीति नाम से प्रख्यात होने लगे और काल का नाम रीतिकाल ही सर्वमान्य होने लगा।



महत्वपूर्ण बिंदु –

रीतिकाल के पहले कवि- यद्यपि केशवदास जी के पूर्व कृपाराम, मोहनलाल तथा अकबरी दरबार के करनेस आदि कई कवियों ने रस और अलंकारों के ऊपर ग्रंथ लिखे हैं, फिर भी साहित्यशास्त्र की विधिवत विवेचना कर हिंदी में रीतिकाल की परंपरा स्थापित करने वालों में केशव दास जी को ही प्रथम कवि माना जाएगा।

1.4 रीतिकाल की पृष्ठभूमि

भक्तिकालीन काव्य लोकवादी रहा है क्योंकि भक्त-कवि प्राय: सामान्य जन के बीच अपनी भक्तिभावना का प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से मूलत: काव्य रचना करने लगे थे। हालाँकि सभी कवि ऐसे नहीं थे। मगर उनमें लोकमंगल एवं मनोरंजन की प्रवृत्ति प्रधान थी। किंतु रीतिकाल आते ही कविता का विषय सामान्य जन से कटकर राजदरबारों

तक फैलने लगा। तत्कालीन समय के देशी तथा विदेशी नवाबों ने उन काव्य पर कब्जा करने लगे। जिस पर सामन्ती परिवेश का पूरा प्रभाव पड़ा। केवल कविता ही नहीं अन्य सभी क्षेत्रों में रीतिकालीन दरबारी प्रभाव पड़ने लगा। रीतिकालीन कविता की निम्नलिखित पृष्ठभूमियों का विवेचन हम यहाँ संक्षेप में कर रहे हैं।

1.4.1 दरबारी पृष्ठभूमि

हर युग में कवि अपने आश्रय के लिए राज-सभाओं में जाने को बाध्य था क्योंकि उसे वहीं सम्मान, वैभव तथा पोषण मिलता था। प्राचीन काल के सम्राटों की राजसभाओं में विद्वान, कवि, गायक, विदूषक, इतिहास पुराण के ज्ञाता आदि रहते थे। इन्हें आश्रय और सम्मान देकर आश्रयदाता भी यश और सम्मान प्राप्त करते थे। विक्रमादित्य और भोज ऐसे ही गुणज्ञ शासक थे। किंतु धीरे-धीरे राजाओं की गुणज्ञता क्षीण होने लगी और उनके दरबारों मे रूढ़िबद्धता बढ़ने लगी। भाव की गंभीरता और व्यापकता के स्थान पर काव्यों में अलंकरण और प्रदर्शन की प्रवृत्ति ही शेष रह गई।

जब शासन-व्यवस्था सुदृढ़ होती है, देश में समृद्धि और शांति होती है, तब अन्य कलाओं के साथ काव्य का भी उत्कर्ष होता है। सम्राट हर्षवर्धन के शासनकाल, आठवीं शताब्दी विक्रमी तक देश में शांति, सुव्यवस्था दृढ़ थी तो काव्य और कलाओं का पूर्ण उत्कर्ष हुआ किंतु उसके बाद पश्चिमोत्तर सीमांत से विदेशियों के आक्रमण प्रारंभ हो गए और देश के उत्तरी भू-भाग में अराजकता छा गई। यह स्थिति न्यूनाधिक अकबर के समय तक बनी रही। मुगल दरबार में संगीतज्ञ, शिल्पी, चित्रकार और विविध भाषाओं के कवि रहते थे। अब्दुल रहीम खानखान जैसे प्रतिभा सम्पन्न प्रशासक, कवि और गुणज्ञ व्यक्ति थे जिनका संपर्क तुलसीदास, केशवदास और वैष्णव भक्तों से बना हुआ था। नरहरि, तानसेन, गंगाधर, बीरबल आदि 'अकबर' के अनेक दरबारी कवि थे। जहाँगीर के दरबार में पुहकर, केशव मिश्र तथा शाहजहाँ के दरबार में सुंदर, कुलपति मिश्र, चिंतामणि और आचार्य पंडितराज जगन्नाथ रहते थे। किंतु उसके बाद औरंगजेब की कट्टरता के कारण कवि-कलाकार मुगल दरबार से विदा हो गए।

जो स्थिति मुगल दरबार की थी वही स्थिति उत्तर भारत के सभी राज दरबारों की थी। अकबर के द्वारा स्थापित समृद्ध राज्य के उत्तराधिकारी विलासी और प्रदर्शन-प्रिय हो गए थे। उसी का प्रभाव स्वरूप देशी राजाओं में भी सुरा-सुंदरी का प्रचलन बढ़ने लगा था, एक तरह से दिखावा की प्रवृत्ति प्रधान होने लगी। रीतिकालीन कवि इस दरबारी वातावरण से सम्पूर्ण रूप से प्रभावित हुए। रीतिबद्ध कवि तो उसके अभिन्न अंग थे ही रीतिमुक्त कवि भी उससे अछूते न रह पाए। बाद में अपनी स्वच्छंदवृत्ति के कारण ये कवि दरबारों से मुक्त होकर स्वतंत्रतापूर्वक काव्य-रचना में लगे।



अपनी प्रगति जाँचे

प्रश्न 1: 'रीति' शब्द से आप क्या समझते है ?

प्रश्न 2: रीतिकाल की उत्पत्ति का समय क्या है ?

1.4.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

औरंगजेब की मृत्यु के बाद देश की केंद्रीय सत्ता का प्रभाव कम होने लगा। जगह-जगह सामंत अपनी शक्ति को बढ़ाने लगे। सामंत, बादशाहों की जीवन पद्धति का भी अनुकरण करने लगे। विभिन्न सामंतों के यहाँ हरमखाने खुलने लगे। हरमखाना में हजारों स्त्रियाँ पुरूष के मनोरंजन के लिए रखे जाने लगे। कला और संगीत में घरानों का उदय भी इसी काल में हुआ था। वस्तुत: सामंत, जीवन के हर पक्ष में बादशाह की नकल करने लगे। सत्ता के विकेंद्रीकरण के साथ उन जीवन दृष्टियों का भी विकेंद्रीकरण हुआ, जिस जीवन दृष्टि को सामंतवाद ने अर्जित किया था। सामंतवादी जीवन मूल्यों ने प्रदर्शन और विलासिता को बढ़ावा दिया।

जैसा कि पहले भी संकेत किया जा चुका है, रीतिकालीन काव्य राजदरबारों में उत्पन्न हुआ, अत: वह एक वर्ग-विशेष की प्रवृत्तियों को ही प्रतिफलित करता है। जिस समय रीतिकाल का आरंभ हुआ उस समय सम्राट और सामंत वैभव के प्रदर्शन और विलासिता में अपने कर्तव्यों को तिलांजलि दे चुके थे। शाहजहाँ के पश्चात उसके बेटों में सत्ता के लिए संघर्ष शुरू हो चुका था। साहिष्णु दारा शिकोह की हत्या कर औरंगजेब गद्दी पर बैठा। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उन्होंने अपनी रूढ़िवादिता के कारण साहित्य, संगीत और कलाओं का बहिष्कार तक किया। हिंदुओं पर तरह-तरह का जुल्म किया गया। इसके परिणामस्वरूप सिखों, मराठों, जाटों आदि ने उनके प्रति विद्रोह शुरू कर दिया। उसका अधिक समय विद्रोहियों को दमन करने में ही गया।

औरंगजेब के पश्चात मुगल वंश में कोई भी ऐसा शासक उत्पन्न नहीं हुआ जो देश में शांति और सुव्यवस्था का स्थापन कर सके। प्रजा इस राजनीतिक दुरावस्था से व्यथित थे-

दुसह दुराज प्रजानु कौं, क्यों न बढ़े दुख-दंदु ।
अधिक अंधेरौ जग करत मिलि मावस रबि-चंदु ।।

बिहारी रत्नाकर

आंतरिक कलह तथा उस तरह के वातावरण में विदेशियों के आक्रमण शुरू होने लगे। नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली ने मनमानी ढंग से कत्ले आम किया और प्रजा को लूटने लगे। उसके प्रतिरोध की क्षमता न तो दिल्ली के बादशाह में थी और न देशी राजाओं में था। संगठन यानि की एकता के अभाव में बाहरी लुटरे लूटपाट कर प्रजा को तबाह करते थे, जिससे राजा अथवा शासक देखते ही रह गए। यही दशा अंग्रेजों से युद्ध करते समय बक्सर में हुई जिसमें शाह आलम पराजित हुए और देश का पूर्वी भाग अंग्रेजों ने

अपने अधिकार में ले लिया। राजा-महाराजा और सामंतगण एकजुट होकर विदेशी आक्रमणकारियों का मुकाबला करते तो हिंदी के कवियों को भी शौर्य और पराक्रम के भाव जगाने की प्रेरणा मिलती। मगर शासक वर्ग में क्षमता की लोभ और स्वार्थपरता ने ऐसा होने नहीं दिया।

1.4.3 सामाजिक पृष्ठभूमि

जब देश में राजनैतिक परिस्थिति ही ठीक न हो तो उसका प्रभाव समाज में नहीं पड़ना स्वाभाविक था। राजा, सम्राट अथवा सामंतशाही सब में विलासिता और वैभव के प्रदर्शन की प्रवृत्ति व्याप्त हो चुकी थी। इसी का परिणाम समाज में शासक और शासित के बीच दुरिया बढ़ती जा रही थी। शासन-तंत्र निरंकुश और शोषक और सुविधावादी बनता जा रहा था। प्रजा की दु:ख, दर्द और पीढ़ा को समझने वाला कोई नहीं था। शोषक-शासकों का समूह बढ़ता जा रहा था और शोषित प्रजा हर प्रकार के अत्याचार को सहने के लिए विवश होते जा रहे थे। ऐसी दशा में प्रजा अपने भाग्य का ही दोष मान कर उसने संतोष कर लिया था।

कवि-कलाकार की भी उसी वातावरण में उदय होने लगा था जिसके परिणाम उन्हें न चाहकर भी अपनी कला के समादर और अपनी आजीविका के लिए सामंत वर्ग अथवा राजा के शरण में जाना ही पढ़ता था। ऐसी स्थिति में वे अपने आश्रयदाता की रुचि के अनुकूल अपनी कला को ढालने का प्रयास करते गए। सामान्य जन में न तो कला की परख थी और न कलाकार को पुरस्कृत करने की क्षमता। जहाँ पेट भरना ही कठिन होता था वहाँ कला का क्या कामढ़ कवि या कलाकार को जहाँ से पोषण मिलता था, वे उसी वातावरण से प्रेरणा लेते थे। रीतिकाल के कवियों को रसिक वर्ग में रखा जा सकता है क्योंकि इन्हें राजदरबार में सामंतों के संसर्ग में रहना पड़ता था। ये अशिक्षित ग्रामीणों को गँवार समझते थे जिनकी गणना अरसिकों में होती थी।

वे न इहाँ नागर, बढ़ी जिन आदर तो आब ।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ, गँवई-गाँव, गुलाब ।।

बिहारी-रत्नाकर

1.4.4 सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

रीतिकालीन कवियों द्वारा कविता जिस संस्कृति की उपज थी, उस पर तत्कालीन दरबारों का विशेष प्रभाव रहा। रीतिकालीन राज-दरबारों में ही संगीत कला, चित्रकला और स्थापत्यकला का पोषण होता रहा था। दरबार चाहे मुगल बादशाहों, नवाबों का हो या फिर देशी राजा-महाराजाओं का हो, कलाकारों को वहीं सम्मान और आश्रय मिलता था। मुगल दरबारों की भाषा फारसी थी, उनकी कलात्मक अभिरुचि ईरानी शैली से प्रभावित थे। हिंदू दरबारों में जिन कलाओं को संरक्षण मिला उन पर भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का

विशेष प्रभाव पढ़ा, किंतु उन पर धीरे-धीरे ईरानी शैली अपना रंग चढ़ाती गई। नीचे इस युग में प्रचलित विभिन्न कलाओं पर सामन्य रूप से आलोचना प्रस्तुत की गयी हैं।

i. चित्रकला

डॉ. कुमारस्वामी ने राजपूत शैली और मुगल शैली की चित्रकला को पृथक-पृथक माना था किंतु नए अनुसंधानों से दोनों शैलियों पर एक दूसरे का प्रभाव पाया गया है। रीतिकाल में इन शैलियों में चित्रकार की आंतरिक ऊर्जा के स्थान पर परंपरा निर्वाह की प्रवृत्ति ही प्राप्त होती है। चाहे ये चित्र नायक नायिका भेद से संबद्ध हों चाहे राग-रागिनियों से या फिर पौराणिक आख्यानों से सब में विलासिता और प्रदर्शन की ही प्रमुखता होती है। पौराणिक आख्यानों या व्यक्ति चित्रों के आलेख में कोई मौलिकता या सजीवता नहीं मिलती।



महत्वपूर्ण बिंदु –

नायक-नायिका भेद: नायक के ये चार प्रकार चार विभिन्न प्रकृति के पुरुषों को प्रदर्शित करते हैं, जबकि नायिकाओं के भेद मुख्यत: श्रृंगार-रस के प्रसंग में उनके नायक से सम्बन्ध के आधार पर किये गये हैं। उदाहरण के लिये जिस नायिका का पति उसके पास हो वह प्रसन्न रहती है और स्वाधीनपतिका कहलाती है।

ii. स्थापत्य कला

फारसी वास्तुशैली को भारतीय स्थापत्य कला से सम्मिश्रित करके जिस नई शिल्पकारी का जन्म हुआ था उसका श्रेष्ठ प्रमाण 'ताजमहल' है। अकबर के शासन काल में लाल पत्थरों के प्रयोग से निर्मित किले सम्राट की महत्वाकांक्षा और पौरुष के प्रतीक बन गए थे। इसी समय से अलंकरण और प्रदर्शन की प्रवृत्ति शुरू हो गई थी फिर भी उनमें चमत्कारपूर्ण प्रभाव उत्पन्न करने की अद्भुत क्षमता थी। राजपूत शैली में निर्मित राजस्थान के महलों के निर्माण में मुगल शैली के अनुकरण का प्रयास लक्षित होता है।

जहाँगीर ने वास्तुकला के विकास में विशेष योगदान दिया। वास्तव में वह चित्रकला का प्रेमी था अत: उसके समय में भवनों, मकबरों और मस्जिदों के निर्माण में भी बारीक पच्चीकारी के नमूने प्राप्त होते हैं। विलास और ऐश्वर्य के इस युग में संगमर्मर के श्वेत पत्थरों में तरह-तरह के बेलबटे और कीमती पत्थरों के प्रयोग द्वारा युगानुरूप प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास किया गया। शाहजहाँ ने इनमें और भी सूक्ष्म सज्जा का प्रयोग किया। जामा मस्जिद और ताजमहल दोनों हुमायूँ के मकबरे के अनुकरण पर निर्मित है। जिस प्रकार चित्रकला में पारंपरिक शैली, विलास और ऐश्वर्य के साथ अलंकरण की प्रवृत्ति प्राप्त होती है, उसी प्रकार तत्कालीन स्थापत्यकला पर मौलिकता शून्य अभ्यासजन्य पच्चीकारी की

अधिकता लक्षित की जा सकती है।

iii. संगीत कला

अकबर के समय में संगीत का चरम उत्कर्ष दृष्टिगत होता है। ग्वालियर के दरबार में 'ध्रुपद' जैसी गंभीर शैली का विकास हुआ। तानसेन ने संगीत में एक कीर्तिमान स्थापित किया। जहाँगीर के समय में संगीत दर्पण' जैसे संगीत शास्त्र का सुव्यवस्थित ग्रंथ निर्मित हुआ। शाहजहाँ के समय में गंभीरता और उदात्तता के स्थान पर कोमल रागों का ज्यादा प्रयोग हुआ। मुगल और हिंदू संगीतज्ञों को राज्याश्रय मिला किंतु औरंगेजेब के कट्टर धार्मिक आग्रह के कारण दिल्ली दरबार से विलासिता और ऐश्वर्य प्रदर्शन के साथ कलात्मक आमोद-प्रमोद भी बहिष्कृत कर दिए गए। मुहम्मदशाह 'रंगीले' के समय में दिल्ली दरबार पुन: संगीतकारों और रसिक कलाकारों से सुशोभित हो उठा। भारतीय संगीत फारसी प्रभाव से सम्पन्न होकर विलासवृत्ति प्रधान हो गया।

इस युग में चतुंरग शैली में ख्याल, तराना, सरगम और चिवट (मृदंग के बोल) सबके मिश्रण से संगीत की वैचित्र्यपूर्ण रचना की जाती थी। डॉ. श्यामसुन्दर दास ने लिखा- वाजिद अली शाह (अवध के नवाब) के समय की रंगीली रसीली ठुमरी अपने-अपने आश्रयदाताओं की मनोवृत्ति की ही परिचायक नहीं लोक की प्रौढ़ रुचि में जिस क्रम से पतन हुआ उसका इतिहास भी है।

इन ललित कलाओं के विकास और ह्रास पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि ये सब अपने आश्रयदाताओं की रुचियों के परिवर्तनों का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। मुगल साम्राज्य के उत्थान के साथ इनका भी उत्थान हुआ और पतन के साथ ही इनमें भी पतन के लक्षण दृष्टिगत हुए।

1.4.5 धार्मिक पृष्ठभूमि

समाज और राजनैतिक परिवेश धर्म को विशेष रूप से प्रभावित करता है। अकबर के शासनकाल में धर्म को लेकर उनका सोच समान था। उनकी उदारता और सहिष्णुता की नीति ने सबको प्रभावित कर लिया था। अकबर ने सभी धर्मों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। उसके द्वारा चलाया गया धर्म 'दीने-इलाही' इसी का प्रमाण है। हिंदू-मुसलमान की एकता के लिए उसने राजपूतों से वैवाहिक संबंध स्थापित किए किंतु औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता ने उसके दीर्घकालीन प्रयासों को धराशायी कर दिया।



महत्वपूर्ण बिंदु –

दीन-ए-इलाही 1582 ईस्वी में मुगल सम्राट अकबर द्वारा एक समरूप धर्म था, जिसमें सभी धर्मों के मूल तत्वों को डाला, इसमें प्रमुखता हिंदू एवं इस्लाम धर्म थे। इनके अलावा पारसी, जैन एवं ईसाई धर्म के मूल विचारों को भी सम्मलित किया।

नैतिक पतन के इस युग में धार्मिक भावना भी अपने उदात्त मूल्यों का त्याग कर रूढ़िपालन और अंधविश्वास से ग्रस्त हो गई। पंडितराज की प्रसिद्ध उक्ति है दिल्लीश्वरों वा जगदीश्वरों वा अर्थात् कवि-कलाकारों को संरक्षण या तो दिल्लीश्वर के दरबार में मिल सकता है, या फिर जगदीश्वर के दरबार में ही। लेकिन उन्हीं पंडितराज के समय में दोनों ईश्वर के चारों और विलासिता और ऐश्वर्य प्रदर्शन का जाल बिछा हुआ था, जिससे धर्म या नैतिकता के स्वरूप में काफी गिरावट आ गई थी।

आचार्य शांडिल्य ने भक्ति की व्याख्या करते हुए ईश्वर के प्रति जिस 'परानुरक्ति' या उत्कृष्ट प्रेम की प्राप्ति भक्त का परम लक्ष्य सिद्ध किया था, कालान्तर में वही भक्ति भाव-तत्व से विहीन होकर स्थूल काम-चेष्टाओं की अभिव्यक्ति का साधन बन गई। श्री सम्प्रदाय के आचार्य रामानुज ने प्रपत्तिवाद या दास्य भक्ति का प्रचार किया था। उन्हीं की शिष्य परंपरा में आने वाले रीतिकालीन सतनामी, लालदासी, नारायणी आदि सम्प्रदायों के शिष्य विलास और वैभव की आराधना करने लगे।

श्री निम्बार्काचार्य ने कृष्णभक्ति की जिस धारा की मधुरता को प्रवाहित किया उनसे दीक्षित होकर रीतिकाल के अधिकांश कवि आतंरिक की उपेक्षा, बाह्य विलास-कलाओं के विस्तार को ही अधिक प्रमुखता दिया और उसी सोच के साथ हिंदी काव्य को विस्तारित करने का निर्णय लिया। राधा वल्लभ तथा चैतन्य मतानुयायी आदियों में भी जिस मधुर रस में प्रेम भक्ति को महत्व दिया गया था, उसी को आगे ले जाते हुए रीतिकवियों ने काममूलक रीति में परिणत कर दिया। रीतिकाल की धार्मिक पृष्ठभूमि सुदृढ़ और उदात्त नहीं रही। मूलत: रीतिकालीन रागानुराग भक्ति में तो विलास-वृत्ति के विकास का पूरा अवकाश था, जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी बच नहीं पाए।

1.4.6 साहित्यिक पृष्ठभूमि

साहित्य पर समाज का दर्पण होता है, और उस दर्पण में समाज के सभी रूप प्रतिफलित होते हैं। रीतिकालीन साहित्य मूलत: प्राचीन संस्कृत काव्यशास्त्र तथा दरबारी सामंतशाही प्रवृत्तियों का विशेष आकलन हैं। रीतिकालीन साहित्यिक पृष्ठभूमि पर चर्चा करने से पहले तत्कालीन कवियों के तथा उनके परिवेशों से परिचित होना नितांत आवश्यक है। रीतिकालीन कवियों का सौंदर्य-बोध मुगलकालीन वैभव और विलास से ही प्रेरित था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस सन्दर्भ में कहा हैं- राजा-महाराजाओं के दरबार में विदेशी शिष्टता और सभ्यता के व्यवहार का अनुकरण हुआ और फारसी के लच्छेदार शब्द वहाँ चारों ओर सुनाई देने लगे।

भक्तिकाल के भक्तकवियों ने सख्य, दास्य, वात्सल्य, और मधुरप्रेम भक्ति इन चार रसों को स्वीकार किया पर कृष्णभक्ति में विशेष रूप से श्रृंगार का विकास हुआ। भक्ति काल की अंतिम रचनाएँ काव्य दृष्टि से श्रृंगार की ही रचनाएँ हैं, भले ही उसे हम लौकिक श्रृंगार की सीमा में रखते हैं, मगर वह ईश्वर से संबद्ध श्रृंगार ही हैं। इस विषय में शुक्ल का कहना है कि हिंदी में श्रृंगार की काव्यधारा भक्तिधारा से ही फूटी अत स्वकीया

–प्रेम के लिए उसमें अवकाश न रहा।

प्रेम के विस्तार और वैविध्य के लिए परकीया प्रेम ही अधिक उपयुक्त था, फिर दरबारों में फारसी प्रेम पद्धति के निरूपण में भी परकीया प्रेम में आवेग और तीव्रता का प्रदर्शन किया जाता था। जिससे हिंदी के कवि भी अछूते न रह सके। भारतीय मर्यादा को ध्यान में रखकर प्रेम के आलंबन श्रीकृष्ण और राधा जी को ही रखा गया। घोर वासनापूर्ण रचना करने वालों ने भी भक्ति की शृंगारिकता का आवरण बनाए रखा। इन कृष्ण भक्त कवियों ने अपने भगवत् प्रेम की पुष्टि के लिए जिस शृंगारमयी लोकोत्तर छटा और आत्मोत्सर्ग की अभिव्यंजना से जनता को रासोन्मत्त किया, उसका लौकिक स्थूल दृष्टि रखने वाले विषय वासना पूर्ण जीवों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, इसकी ओर उन्होंने ध्यान न दिया। फलत: रीतिकालीन कविता में राधा–कृष्ण के नाम के साथ उनकी वे सारी लीलाएँ भी आ गई जो तयुगीन वैलासिक अभियक्ति में सहायक हुईं।

रीतिकालीन कविता में जिस साहित्यिक दृष्टिकोण का विकास हुआ है, वह भारतीय साहित्य की परंपरा से सम्बन्ध रखता है। रीतिकालीन कविता को इससे पर्याप्त प्रेरणा मिली।

1.5 रीतिकालीन प्रवृतियाँ

रीतिकाल की साहित्य को मूलत: तीन वर्गों में विभाजित किया जाता हैं– रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। इस युग के कवि राजाओं के आश्रय में रहकर अपने काव्य का सृजन करते थे। राजाश्रित कवियों में से अधिकांश तथा जनकवियों में से कतिपय ऐसे थे, जिन्होंने आत्मप्रदर्शन की भावना या काव्य–रसिक समुदाय को काव्यांगों का सामान्य ज्ञान कराने के लिए रीतिग्रंथों का प्रणयन किया। अत: इनकी सबसे प्रमुख विशेषता व प्रवृत्ति रीति–निरूपण की ही रही। इसके साथ ही आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए श्रृंगारिक तथा अलंकारिक प्रविक्तियों की रचनाएँ की। अत: श्रृंगारिकता भी इस युग की प्रमुख प्रवृत्ति थी। इधर आश्रयदाता राजाओं के दान, पराक्रम आदि को आलंकारिक करने से उन्हें धन–सम्मान की प्राप्त होते थे। वहीं धार्मिक संस्कारों के कारण दो एक कवि ने भक्तिपरक रचनाएँ की। इस प्रकार राज–प्रशस्ति एवं भक्ति भी रीतिकाल की प्रवृत्ति रही। दूसरी ओर इन कवियों ने अपने कटु–मधुर व्यक्तिगत अनुभवों को भी समय–समय पर नीतिपरक अभिव्यक्ति प्रदान किया फलस्वरूप इनसे नीतिपरक काव्य की भी रचना हुई और यह भी इनके प्रवृत्तियों के अंतर्गत आता हैं। कुल मिलाकर रीतिकालीन प्रवृत्तियों को अगर ध्यान दिया जाय तो मूलत: रीतिकाल में जो प्रवृत्ति सामने आई हैं, उनको हम दो शीर्षकों में बाँटकर देखेंगे–

1. मुख्य प्रवृत्ति, और
2. गौण प्रवृत्ति

दूसरी ओर गौण प्रवृत्तियों को तीन भागों में बांटा है–

1. राजप्रशस्ति या वीर काव्य
2. भक्ति
3. नीति

i. रीति-निरूपण -

काव्यांग विवेचन के आधार पर इसकी दो अंत: प्रवृत्तियां ठहरायी जाती हैं-

1. सर्वांग विवेचन और
2. विशिष्टांग विवेचन।

सर्वांग विवेचन प्रवृत्ति के अंतर्गत आनेवाले ग्रंथों में कवियों ने सामान्यत: काव्य-हेतु, काव्य-लक्षण, काव्य-प्रयोजन, काव्य-भेद, काव्यशक्ति, काव्य-रीति, अलंकार, छंद आदि का निरूपण किया है। चिंतामणि का 'कविकुलकल्पतरू', देव का 'शब्दरसायन', कुलपति का 'रसरहस्य', भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय' आदि इसी प्रवृत्ति के ग्रंथ हैं। विवेच्य शैली के आधार पर इस काल में रीति-निरूपण की मुख्यत: तीन शैलियाँ प्रचलित हैं-

प्रथम 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण' की शैली है। इसके अंतर्गत चिंतामणि के 'कविकुलकल्पतरू', देव का 'शब्द रसायन', भिखारीदास का 'काव्यनिर्णय' आदि को रखा जाता है। इसमें 'मम्मट', 'विश्वनाथ' द्वारा दी गयी संस्कृत गद्य की वृत्ति के समान ब्रजभाषा गद्य की वृत्ति देकर विषय को समझाया गया है। दूसरी शैली 'चन्द्रालोक' 'कुवलयानंद' की संक्षिप्त शैली है। जसवंत सिंह की 'भाषाभूषण', गोविंद का 'कर्णाभरण', पद्माकर का 'पद्माभरण', दूलह का 'कविकुलकंठाभरण' आदि इस शैली के ग्रंथ हैं। तीसरी शैली भानुदत्त की 'रसमंजरी' की है। इसमें लक्षण एवं सरस उदाहरण देकर विषय निरूपण किया गया है।



महत्वपूर्ण बिंदु –

साहित्यदर्पण संस्कृत भाषा में लिखा गया साहित्य विषयक ग्रन्थ है जिसके रचयिता पण्डित विश्वनाथ हैं। विश्वनाथ का समय 14वीं शताब्दी ठहराया जाता है। मम्मट के काव्यप्रकाश के समान ही साहित्यदर्पण भी साहित्यालोचना का एक प्रमुख ग्रन्थ है। काव्य के श्रव्य एवं दृश्य दोनों प्रभेदों के सम्बन्ध में इस ग्रन्थ में विचारों की विस्तृत अभिव्यक्ति हुई है। इसका विभाजन 10 परिच्छेदों में है।

ii. श्रृंगारिकता -

रीतिकाल की दूसरी बड़ी विशेषता श्रृंगार रस की प्रधानता है। इस काल की कविता में नखशिख और राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का चित्रण व्यापक स्तर पर हुआ है। दरबारी परिवेश के फलस्वरूप नारी केवल पुरुष के रतिभाव का आलम्बन बनकर रह

गई। श्रृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन इस युग की कविताओं में हुआ है। श्रृंगार में आलंबन और उद्दीपन के बड़े ही सरस उदाहरणों का निर्माण हुआ है। संयोग चित्रण में कहीं-कहीं रति चित्रण की वजह से अश्लीलता भी दिखाई देती है, वहीं वियोग वर्णन में कवि-कर्म ऊहात्मक और खिलवाड़ बन कर रह गया है। भागीरथी मिश्र ने इन कवियों के बारे में लिखा है की, उनका दृष्टिकोण मुख्यत: भोगपरक था, इसलिए प्रेम के उच्चतर सोपानों की ओर ये नहीं जा सके। प्रेम की अनन्यता, एकनिष्ठता, त्याग, तपश्या आदि उदात्त पक्ष उनकी दृष्टि में बहुत कम आयें हैं।

रीतिबद्ध कवियों के प्रेम चित्रण में जहाँ रसिकता और कामुकता दिखाई देती है वहीं दूसरी तरफ रीतिमुक्त कवियों के यहाँ प्रेम चित्रण में स्वच्छंदता, उदात्तता एवं अकृत्रिमता दिखाई देती है। रीतिमुक्त कवियों के यहाँ विरह वर्णन की प्रधानता है परंतु विरह ताप की अतिशयता एवं विरहजन्य उहात्मकता नहीं दिखाई पड़ती।

iii. अलंकारिता -

रीति काल की एक अन्य प्रधान प्रवृत्ति आलंकारिकता भी है। इसका कारण राजदरबारों का विलासी वातावरण तथा ये कवि कविता को अलंकारों से सजाने को अपनी सार्थकता भी समझते थे। इस युग के कवियों सभी अलंकारों का निरूपण अपनी कविताओं में किया है। यहाँ कविता साधन न होकर साध्य है। अधिकतर कवियों ने अलंकारों के लक्षण उदाहरण दिए, लेकिन बहुतों ने केवल उदाहरण ही लिखे, जबकि उनके मन में लक्षण विद्यमान थे। इस युग में अलंकारों का इतना अधिक प्रयोग हुआ कि वह साधन न रहकर साध्य हो गया। कभी-कभी केवल अलंकार ही अलंकार स्पष्ट होते हैं और कवि का अभिप्रेत अर्थ उसी चमत्कार में कहीं खो जाता है। इस अलंकार प्रेम की वजह से इस दौड़ की कविताएँ विकृति भी हो गया है। यह दोष रीति कालीन कविता में प्राय: दिखाई पड़ता है। केशव को इसी कारण शुक्ल जी ने कठिन काव्य का प्रेत कहा है। केशवदास अलंकार विहीन कविता को काव्य मानते ही नहीं, भले ही उसमें अन्य कितने ही गुण विद्यमान हों।

iv. राजप्रशस्ति -

रीतिकाल के अधिकांश कवि दरबारी कवि थे, राजाओं के आश्रय में रहते थे, इसलिए इन आश्रयदाताओं का गुणगान करना इनकी मज़बूरी भी थी। परिणाम स्वरूप इन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से किया है, भूषण जैसे कुछ कवि अपवाद हैं। रीतिमुक्त कवियों ने आत्माभिव्यक्ति को अपने काव्य में अभिव्यक्त किया है।

v. चमत्कार प्रदर्शन एवं बहुज्ञता -

इस युग के कवियों ने चमत्कार प्रदर्शन के साथ बहुज्ञता का भी प्रदर्शन अपने ग्रंथों में किया है। चमत्कार प्रदर्शन के अंतर्गत विभिन्न अलंकारों के प्रयोग के साथ शब्दों की पच्चीकारी एवं रमणीयता पर ज्यादा ध्यान दिया गया है, वहीं बहुज्ञता को प्रदर्शित करने के

लिए साहित्येतर विषयों- ज्योतिष, गणित, काव्य एवं नीतिशास्त्र आयुर्वेद जैसे विषयों को भी अपने काव्य का माध्यम बनाया है।

vi. भक्ति -

भक्ति की प्रवृत्ति ग्रंथों के मंगलाचरणों, ग्रंथों की समाप्ति पर आशीर्वचनों, भक्ति एवं शांत रस के उदाहरणों में मिलती है। ये कवि राम-कृष्ण के साथ गणेश, शिव और शक्ति में समान श्रद्धा व्यक्त करते पाये जाते हैं। अत: यह माना जा सकता है कि किसी विशेष सम्प्रदाय के अनुयायी होते हुए भी धार्मिक कट्टरता नहीं थी। वास्तव में इस समय भक्ति धार्मिकता का परिचायक नहीं थी बल्कि विलास से जर्जर दरबारी वातावरण से बाहर व्याकुल मन की शरणभूमि थी।

vii. नीति -

भक्ति इनके व्याकुल मन शरणस्थली थी तो नीति-निरूपण दरबारी जीवन के घात-प्रतिघात से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व के विरेचन के लिए शाँति का आधार था। यही कारण है कि आत्मोपदेशों में इनके वैयक्तिक अनुभवों की छाप प्राय: देखने को मिल जाती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि गौण-प्रवृत्तियों में राज प्रशस्ति की प्रवृत्ति, श्रृंगारी प्रवृत्ति के समान उस युग के दरबारी जीवन में 'प्रवृत्ति' की परिचायक है, जबकि भक्ति एंव नीति ने उससे निवृत्ति की।



1.6 सारांश

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि रीतिकालीन में रचित कवितायों की पृष्ठभूमि भक्तिकालीन कविता की आदर्शोन्मुख गंभीरता, व्यापकता और मानवीय मूल्यों की उदात्तता की तुलना में कमजोर है। राजनीतिक प्रभाव के साथ ही धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्रों में नैतिकता का ह्रास, रूढ़िवादिता और मौलिकता का अभाव व्याप्त हो गया था। काव्य में अलंकरण और श्रृंगारिकता का प्रचलन बढ़ने लगा था। भारत-ईरानी कला और जीवन दर्शन ने साहित्य में व्यापक प्रभाव विस्तारित किया। देवालयों में मुगल दरबार का अनुकरण किया जाने लगा। मर्यादा पुरुषोत्तम राम और नट नागर कृष्ण दोनों पर तत्कालीन दरबारों का प्रभाव पाया जाने लगा। सामान्य जन-भावना से देश के शासक और विश्वनियंता देवता दोनों दूर होते गए। कुछ कवियों ने साधारण जन-गन की भावनाओं को, उनके स्वच्छंद अनुभवों को काव्य में स्थान दिया मगर वो भी इतना सशक्त रूप में हो पाया।

1.7 1.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर: रीति शब्द रीड धातु से रिक्त 'प्रत्यय' मिला देने पर बनता है। इसका शाब्दिक अर्थ प्रगति, पद्धति, प्रणाली या मार्ग है। रीति शब्द से सम्बंधित विस्तार रूप से चर्चा ऊपर की गयी है कृपया इकाई में देखें।

प्रश्न 2 का उत्तर: आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रीतिकाल का समय संवत 1700 से 1900 निर्धारित करते हुए यह भी कहा कि रस की दृष्टि से विचार करते हुए कोई चाहे तो उसे श्रृंगार काल कह सकता है। रीतिकाल के बारे में जानने के लिए कृपया ऊपर इकाई में पढ़ें।

1.8 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
2. लक्ष्मी लाल बैरागी, हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का इतिहास, संघी प्रकाशन, जयपुर।
3. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
5. राम खेलावन पाण्डेय, हिंदी साहित्य का नया इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
7. डॉ. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. डॉ. धीरेन्द्र वामा, हिंदी साहित्य (भाग 1 और 2), भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहाबाद।



1.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. दुसह दुराज प्रजानु कौं, क्यों न बढ़े दुख-दंदु ।
   अधिक अंधेरौ जग करत मिलि मावस रबि-चंदु । इस काव्य के कवि का नाम बताओ।
2. 'रीतिकाल की साहित्य को कितने वर्गों में विभाजित किया जाता हैं ?
3. भक्ति शब्द से आप क्या समझते हों ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. हिंदी साहित्य इतिहास के रीतिकाल पर एक सम्यक लेख प्रस्तुत कीजिए।
2. रीतिकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों पर आलोचना कीजिए।
3. रीतिकालीन पृष्ठभूमियों पर एक आलेख प्रस्तुत कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 2 रीतिकाल के कवियों का वर्गीकरण

इकाई की रुपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 रीतिकाल के नामांकन

2.4 रीतिकालीन कवियों का वर्गीकरण

2.5 रीतिकालीन काव्य के वर्गीकरण

2.5.1 रीतिबद्ध

2.5.2 रीतिसिद्ध

2.5.3 रीतिमुक्त

2.6 सारांश

2.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

2.8 अधिक जानने के लिए पढ़े

2.9 अभ्यास प्रश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप–

- रीतिकाल के कवियों के बारे में जान पाएंगे।
- रीतिकाल के कवियों के वर्गीकरण के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- रीतिकालीन कवियों के साहित्य के बारे में आप जान सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के जिस कालखंड को रीतिकाल कहा जाता है, उस समय मूलत: दरबारी प्रवृत्ति की प्रधानता थी। इस काल में श्रृंगारिकता तथा अलंकरण प्रवृत्ति को प्रमुखता दी गयी है। आइए इस काल खंड के नामकरण पर अध्ययन करते है।

2.3 रीतिकाल के नामांकन

हमारे साहित्य का मध्यकाल दो भागो में विभक्त है। भक्तिकाल और रीतिकाल। भक्तिकाल के आध्यात्मिक प्रेम की मिटती हुई छाया ने मानवीय प्रेम को प्रस्तावित किया। प्रेम और भक्ति की अद्वैत अनुभूति के बीच से प्रेम का संबंध श्रृंगारिक मनोवृत्ति से जुड़ता गया। रीतिकाल में साहित्य और दरबारी संस्कृति के बीच बड़ा गहरा संबंध है। इस काल के

कवि अपने आश्रयदाता सामंतो के यहाँ रहते थे। उन्ही के मनोरंजन के लिए साहित्य रचना करते थे। कवि अब सहज अनुभूति की प्रेरणा से काव्य रचना नहीं करते थे। साहित्य कवियों के अर्थ प्राप्ति का साधन हो गया था। इस स्थिति में रीतिकाव्य में रसिकता और शास्त्रीयता का योग हुआ जो सामंतो द्वारा पोषित थी और शास्त्र द्वारा रक्षित। इन कवियों के मानसिक गठन में किसी प्रकार का कोई द्वन्द्व नहीं मिलता है। उन्होनें जीवन के प्रश्न से अलग हटकर विशुद्ध कला के प्रश्नों को अपने साहित्य की बुनियाद में रखा।

हिन्दी साहित्य के ''उत्तरमध्यकाल'' के नाम को लेकर विद्वानों में विवाद है। इस काल को नामांकित करने के लिए तीन चार नाम सुझाए गए हैं। रीतिकाल के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा सुझाएँ गए नाम निम्नलिखित हैं –

1. मिश्रबंधु – अलकृंत काल
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल – रीतिकाल
3. रामकुमार वर्मा – कलाकाल
4. डॉ रसाल – काव्यकला काल
5. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद – श्रृंगार काल



महत्वपूर्ण बिंदु –

आचार्य शुक्ल हिंदी के उच्चकोटि के आलोचक एवं इतिहासकार और साहित्यक चिंतक हैं। विज्ञान, दर्शन, इतिहास, भाषा विज्ञान, साहित्य और समाज के विभिन्न पक्षों से संबंधित लेखों, पुस्तकों के मौलिक लेखन, संपादन और अनुवादों के बीच से उनका जो ज्ञान संपन्न व्यापक व्यक्तित्व उभरता है, वह बेजोड़ है।

सर्वप्रथम 'मिश्रबंधु विनोद' ने उस काल को 'अलकृंत काल' कहा। मिश्रबंधु के बाद आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने व्यवस्थित इतिहास अध्ययन और इतिहास दृष्टि के आधार पर उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल नाम से संबोधित किया। शुक्ल जी के बाद के इतिहासकारों में रामकुमार वर्मा ने उस युग की संवेदना के मूल में कलात्मक गौरव को रेखांकित करते हुए 'कलाकाल' की संज्ञा दी, डॉ. रसाल ने इस युग को 'काव्यकला काल' कहना अधिक उपयुक्त माना है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इस काल को श्रृंगार काल नाम से संशोधित करते है।

'अलंकृत काल', 'कलाकाल' जितने भी नाम दिए गए है, वे सभी नाम रीतिकाल की अपेक्षा सीमित अर्थ देने वाले हैं। यदि अलंकृत काल कहते है, तो इससे मात्र अलंकार का संकेत मिलता है। अलंकृत शब्द से युग की कविता का ही विश्लेषण हो सकता है। उससे लक्षण ग्रंथों का विश्लेषण नहीं हो सकता, जो इस काल में उपलब्ध होते है। यह नाम पूरे युग की मानसिक बनावट का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता है। कलाकाल से मात्र साहित्य

कला का नहीं, कला के विभिन्न रूपों का बोध होता है। इस नाम से कोई साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं उभरती है। साहित्य सृजनात्मक कर्म है, लेकिन वह कलाकर्म की कोटि तक इस युग में ही पहुँचता है। किन्तु यह नाम उस काल खंड के साहित्य की आंतरिक या बाह्य संवेदना की मूलभूत विशेषताओं को प्रतिपादित नहीं करता। ''काव्य कला काल'' एक सामान्य नाम है। कला काल नाम में काव्य को जोड़कर साहित्य और कला की विभिन्नता की ओर संकेत किया गया है।

मुख्य विवाद रीतिकाल और श्रृंगार काल को लेकर है। आचार्य शुक्ल के मन में रीतिकाल नामकरण करते हुए भी श्रृंगार काल का विकल्प उपलब्ध था। उन्होंने लिखा है '' वास्तव में श्रृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता श्रृंगार की ही रही। इससे उस काल को रस के विचार से कोई श्रृंगार काल कहे तो कह सकता है।

रीति शब्द का प्रयोग संस्कृत काव्यशास्त्र में एक विशिष्ट मूल्यांकन पद्धति के लिए हुआ था। हिंदी में रीतिकाव्य के पूर्व इस शब्द का प्रयोग बहुत कम सुनने को मिलता है। जगदीश गुप्त के अनुसार रीति शब्द का प्रयोग तुलसीदास के पार्वती मंगल में पद्धति के अर्थ में हुआ है। भिखारीदास ने ''काव्य की रीति सिखौ सुकबीन सों'' में काव्य सिद्धांत या काव्य रचना के नियम या पद्धति के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है। शुक्ल जी ने उन सारे अर्थों को रीतिकाल में समाहित कर दिया है।

रीति शब्द से शास्त्रीय मार्ग या पद्धति के अतिरिक्त रचनात्मक कौशल एवं काव्य के विभिन्न घटकों का भी बोध होता है। साहित्य और साहित्य से परे पद्धति, कौशल, श्रृंगारिकता, नायिका भेद, कलात्मकता आदि के अर्थ में रीतिकाल नाम लिया जाता है। सारांश रूप में कह सकते है रीतिकाल शब्द में अर्थ विस्तार हुआ है। यह मात्र शास्त्र का पर्याय न होकर श्रृंगारिक संवेदना को भी सूचित करता है।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जो आधुनिक युग के रीतिवादी आचार्य हैं, उनके द्वारा प्रस्तावित नाम श्रृंगार काल युग संवेदना की दृष्टि से यद्यपि उस काल की प्रधान मनोवृत्ति को व्यक्त करता है लेकिन यह नाम साहित्य की सीमाओं से आगे नहीं जा पाता। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने श्रृंगार काल कहने के पीछे यह तर्क दिया है कि रीतिकाल कहने से रीतिमुक्त कवियो की उपेक्षा होती है। रीतिकाल की जो स्वच्छंदतावादी धारा है जिसमें घनानंद, बोधा, आलम, ठाकुर जैसे कवि हैं, रीतिकाल कहने से इन कवियों की रचनाधारा उसमें समाहित नहीं होती। लेकिन श्रृंगार काल कहने से भी सभी कवियो को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलता। भूषण जैसे वीर रस के कवि और कुछ भक्त कवि फिर भी छूट जाते है। इसके अतिरिक्त काव्यांग विवेचन की दृष्टि से लिखित अनेक महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध लक्षण ग्रंथ उसकी सीमा में नहीं आ पाते। काव्यांग विवेचन रीतिकाल की एक प्रमुख प्रवृत्ति है।

आचार्य शुक्ल की इतिहास दृष्टि, एक युग समीक्षक और संस्कृति समीक्षक की दृष्टि है। शुक्ल जी रीतिकाल के विश्लेषण में साहित्य के साथ उस युग की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थिति पर भी विचार करते है। वे नामकरण के द्वारा

पूरे युग और समूची सामंती संस्कृति की विशेषता को एक नाम में बाँधना चाहते है। इसलिए उनके यहाँ शब्दों का अर्थ विस्तार होता है। रीति मात्र पद्धति का पर्याय नहीं होकर एक युग की सोच और उस युग के मानसिक ढाँचे को प्रतिबिम्बित करता है। उनके द्वारा दिए गए नाम रीतिकाल में व्यापक अर्थ की व्यंजना है। जिसमें जीवन और समाज की कई विशिष्टताओं को प्रतिपादित करने की शक्ति है। साथ ही रीतिकाल नाम हिन्दी के पाठकों की पाठकीय संवेदना का हिस्सा बन गई है।

2.4 रीतिकालीन कवियों का वर्गीकरण

रीति–निरूपण के आधार पर रीतिकवियों के मुख्यत: दो वर्ग हैं– सर्वांग–निरूपक और विशिष्टांग निरूपक। सर्वांग निरूपक वह कवि हैं, जिन्होंने काव्य के समस्त अंगों जैसे काव्य लक्षण, कव्याहेतु, कव्याप्रयोजन, कव्यभेद, काव्य की आत्मा (रस अथवा ध्वनि), शब्द, गुण, दोष, अलंकार तथा छंद आदि का विवेचन अपने ग्रंथों में किया है। चिंतामणि, कुलपति, सुरती मिश्र, श्रीपति देव आदि ऐसे ही आचार्य हैं। विशिष्टांग निरूपक आचार्यों ने काव्य के सभी अंगों को अपने विवेचन का विषय न बनाकर उसके तीन महत्वपूर्ण अंगों– रस, अलंकार और छंद में से एक अथवा अनेक ग्रंथों में किया है। इनमें से रस निरूपण करनेवालों के भी तीन वर्ग हैं– समस्त रसों का निरूपण, श्रृंगार रस निरूपक और श्रंगार रस के आलंबन नायक–नायिकाओं के भेदोपभेदों के निरूपक। यदि इन तीनों अंगों को स्वतंत्र रूप में ले तो इन कवियों के मुख्यत: निम्नलिखित चार वर्ग निकलेंगे–

1. सर्वांग–निरूपक
2. रस–निरूपक
3. अलंकार–निरूपक और
4. छंदोनिरूपक।

1. **सर्वांग निरूपक**– इस वर्ग के कवियों की संख्या बहुत अधिक नहीं है। विषय की व्यापकता, विस्तृत शास्त्रीय आधार, गहन चिंतन, मौलिक उद्भावना–प्रवृत्ति, आलोचकों के लिए अपेक्षित आत्मविश्वास और साहस, सुबोध एवं स्पष्ट निरूपण शैली आदि ने रितिनिरुपक कवियों की तुलना में इन्हें ऊँचे स्थान पर रख दिया हैं। नीचे इस वर्ग के कवि और उनकी रचनाओं के बारे में जानने की कौशिश हैं–

   चिंतामणि– चिंतामणि द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या नौ बताये जाते हैं– रसविलास, छंदविचार, पिंगल, श्रृंगारमंजरी, कविकुलकल्पतरु, कृष्णचरित, काव्यविवेक, काव्यप्रकाश, कवित्तविचार और रामायण।

क) **कुलपति मिश्र**– चिंतामणि परंपरा के दुसरे प्रमुख कवि है कुलपति मिश्र। इनके पांच ग्रन्थ हैं। रसरहस्य, संग्रामसार, दुर्गाभक्तिचन्द्रिका, मुक्तितरंगिनी तथा नखशिख।

ख) **देव**– देव इस परम्परा के प्रमुख कवि है। इनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या 72 बतायें जाते हैं, मगर इनमें से आज केवल 15 ही उपलब्ध है। जिनमें से– भावाविलास,

अष्टयाम, भावानिविलास, प्रेम चन्द्रिका, कुशलविलास, जतिविलास, रसविलास आदि उल्लेखनीय है।

ग) **भिखारीदास**- रीतिकालीन सर्वांग-विवेचक कवियों में से आचार्य भिखारीदास का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। इनके द्वारा रचित सात ग्रन्थ उपलब्ध हैं- रससारांश, काव्यनिर्णय, श्रृंगार निर्णय, छंदोर्ण पिंगल, शब्दनाम कोश, विष्णुपुराण भाषा और शतरंजशतिका।

घ) **रसिकगोविन्द**- रसिक्गोविंद ने दस ग्रन्थ लिखे थे। जिनमें से रामायण सूचनिका, रसिक गोविंदानन्दघन, लछिमन चंद्रिका, अष्टदेशभाषा, पिंगल, समयप्रबन्ध, कलियुगरासो, रसिकगोविन्द और युगलरस माधुरी आदि।

ङ) **अमीरदास**- अमीरदास ने 12 ग्रंथों की रचना की, जिनमें से सभामंडन, वृत्तचन्द्रोदय, ब्रजविलास सतसई, श्री कृष्ण साहित्य सिन्धु, शेरसिंह प्रकाश, फागपचीसी, ग्रीष्मविलास, भागवतरला कर, दूषण उल्लास, अमीर प्रकाश, वैद्यकल्पतरु एवं अश्वसंहिता प्रकाश हैं।

च) **ग्वाल कवि**- कवित्व एवं आचार्यत्व का सम्यक निर्वाह करनेवाले इस युग के अंतिम चरण के सर्वांग निरूपक कवियों में ग्वाल का स्थान अन्यतम है। इनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या सोलह बतायें जाते हैं। रसिकानन्द, कवि दर्पण, बलवीर विनोद, साहित्यानन्द, प्रस्तार प्रकाश, नेहनिर्वाह, बंसीबीसा, हम्मीर हठ, विजय विनोद, भक्तभावन, कुब्जाष्टक, गुरु पचासा, कवि हृदय विनोद, निम्बार्कस्वाम्याष्टक, इश्क लहर दरियाव आदि।

2. सर्वरस, श्रृंगार रस और नायक-नायिका भेद- निरूपक कवि-

इस वर्ग के कवियों की संख्या दुसरे वर्ग के कवियों की तुलना में सबसे अधिक और साहित्य की प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं का भी अधिक प्रतिनिधित्व करता हैं। मगर कहना होगा कि श्रृंगार रस और नायक-नायिकाभेद विवेचन में उनकी मान्यताएँ या तो अशास्त्रीय है या फिर उनमें मौलिकता की कमी नजर आते है। सामान्यत: लक्षण दोहों में और उदहारण कवित्त, सवैया अथवा दोहा छंद में दिए गए हैं। विवेचन की विशेषता अपने आप में यही रही है कि लक्षण स्वच्छ तथा उदहारण तदनुरूप, सुबोध एवं सरल हैं। नीचे इसका कतिपय परिचय दिया गया है-

- **सर्वरस-निरूपक रीतिकवि**- तोष- रस के तीन ग्रन्थ हैं लेकिन इनमें से केवल 'सुधानिधि' ही उपलब्ध है।

  ➢ **रसलीन** - रसविवेचन और नखशिखवर्णन का 'रसप्रबोध' और 'अंगदर्पण नमक इनके दो रीतिग्रंथ प्रसिद्द हैं।

  ➢ **पद्माकर** - इनके द्वारा रचित सैट मौलिक ग्रन्थ बताये जाते हैं। लेकिन इनके मौलिक ग्रंथों में 'पद्माभरण' और 'जगद्विनोद' ही रीतिग्रन्थ है। इन ग्रंथों में क्रमश:

अलंकार और नवरस–विवेचन किया गया है।

➢ इसके अलावा बेनी 'प्रवीन' की 'नवरस तरंग' सुखदेव मिश्र की वृत्तविचार, छंदविचार रसरत्नाकर आदि।

- **श्रृंगार निरूपक कवि**

➢ **मतिराम**– श्रृंगार रस को रसशिरोमणि मान कर केवल उसी का सांगोपांग विवेचन करने वाले आचार्यों में मतिराम का नाम सबसे महत्वपूर्ण है। इनके ग्रंथों में से फुलमंजरी, रसराज, ललितललाम, सतसई, अलंकारपंचाशिका आदि। रसराज के उदाहरणों का वर्ण विषय श्रृंगार हैं।

➢ **कृष्णभट्टदेव**– श्रृंगाररसमाधुरी और अलंकारनिधि इस धारा के ग्रन्थ है।

➢ **नायक**–नायिका भेद–निरूपक रीतिकवि

➢ इस युग में रस–विवेचन के सन्दर्भ में नायक–नायिका भेद का विवेचन मतिराम, तोष, रसलीन आदि कवियों ने किया किंतु इस काल में प्रमुख है कालिदास त्रिवेदी। इन्होने 'वारवधूविनोद' नामक नायिकाभेद– विवेचन विषयक ग्रन्थ लिखा।

- **अलंकार निरूपक रीतिकवि**

➢ इस शाखा के कवियों ने कवित्त प्रदर्शन के स्थान पर अलंकार का सामान्य ज्ञान करने के उद्देश्य से ही ऐसे ग्रंथों का निर्माण किया। जैसे जसवंत सिंह के 'भाषाभुषण', मतिराम के 'ललितललाम' और 'अलंकारपंचाशिका', आदि।

➢ इसी क्रम में अलंकार विवेचक कुछ अन्य कवि भी निकले, जिनमें से गोप, रसिक, सुमति, रघुनाथ, दुलाह आदि है। गोप के रामालंकार, रामचंद्रभूषण, रामचंद्राभरण, रसिक सुमति के 'अलंकार चंद्रोदय तथा दुलाह के कविकुल कंठाभरण इस सन्दर्भ में विशेष है।

- **छंदनिरूपक रीतिकवि**

➢ इस धारा के कवि हैं सुखदेव मिश्र और उनके ग्रन्थ हैं– 'वृत्त विचार' और 'छंदोविचार', मतिराम के 'छंदसारसंग्रह' और 'वृत्तकौमुदी', रामसहाय के 'वृत्त तरंगिनी' आदि।



अपनी प्रगति जाँचे

प्रश्न 1: सर्वांग–निरूपक से आप क्या समझते है ?

प्रश्न 2: अलंकार निरूपक रीतिकवि के नाम बताएं ?

2.5 रीतिकालीन काव्य के वर्गीकरण

विद्वानों के अनुसार रीतिकाल में मूलत: तीन प्रकार के काव्य उपलब्ध हैं। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीति मुक्त।

2.5.1 रीतिबद्ध– रीतिसिद्ध और रीतिबद्ध के सन्दर्भ में आचार्य विश्वनाथ और डॉ. नगेन्द्र में मतभेद है। विश्वनाथ के अनुसार रीतिबद्ध रचना लक्षणों और उदाहरणों से युक्त है। पर नगेन्द्र ऐसे कवियों को रीतिकार या आचार्य कवि कहने के पक्षधर नहीं है। उनकी दृष्टि में रीतिबद्ध कवि वे हैं, जिन्होंने रीतिग्रंथों की रचना न करके काव्य–सिद्धांतों या लक्षणों के अनुसार काव्य–रचना की है। अलंकार, रस, नायिकाभेद, ध्वनि आदि उनके ध्यान में तो हैं, परंतु उनका प्रत्यक्ष निरूपण इन कवियों ने नहीं किया है। ऐसी दशा में मूलत: वे कवि हैं, आचार्य नहीं। आचार्य विश्वनाथ ऐसे कवियों को रीतिसिद्ध कवि कहते है। इन विवादों के बावजूद हम सीधा यह कहेंगे कि रीतिबद्ध काव्यधारा उन कवियों की है, जिन्होंने अपने शास्त्रीय ज्ञान को दर्शाने के लिए लक्षण ग्रंथों की तथा सामान्य पाठकों के लिए काव्यशास्त्र के सिद्धांतों का ज्ञान करने के लिए सरस काव्यों की रचना की। उदहारण के तौर पर–

केशवदास– कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रिका, विज्ञानगीता, छंदमाला इत्यादि।

चिंतामणि– रस विलास छंदविचार, पिंगल, श्रृंगार मंजरी, कविकुलकल्पतरु इत्यादि।

मतिराम– ललित ललाम, रसराज, फुलमंजारी, सतसई, साहित्यासार, अलंकारपंचाशिका इत्यादि।

भूषण– शिवराजभुषण, शिवावावनी, छत्रसालदशक इत्यादि।

देव– भावविलास, भावानी विलास, जाति–विलास, देव चरित, सुजन विनोद, काव्य रसायन, प्रेमचंद्रिका इत्यादि।

भिखारीदास– रस सारांश, काव्य निर्णय, श्रृगार निर्णय, छंदोर्णव पिंगल इत्यादि।

पद्माकर– जगद्वविनोद, गंगा लहरी, प्रबोध पचासा इत्यादि।

2.5.2 रीतिसिद्ध– इस धारा में रीतिकाल के वह कवि आते हैं, जिन्होंने तो कभी रितिग्रंथों की रचना नहीं की मगर उन्हें रीति की पूरी जानकारी थी। जिसका उपयोग उन्होंने अपने काव्य ग्रंथों की रचना करते समय प्राप्त किया है। इस धारा के कवि हैं– बिहारी। उनके एकमात्र रचना है 'बिहारी– सतसई'। मगर एक रचना ने उन्हें जितनी ख्याति दिलाई वह संभवत: किसी अन्य रचना में नहीं मिलता। यह ग्रन्थ भक्ति, नीति और श्रृंगार के त्रिवेणी है। इसके अलावा कृष्ण कवि के 'बिहारी–सतसई की टीका', पजनेस की 'नखशिख' और 'मधुरप्रिया' आदि इस धारा की रचनाएँ हैं।

2.5.3 रीतिमुक्त– इस धारा को कुछ लोग रीतिमुक्त और कुछ लोग 'स्वच्छंद काव्यधारा'

के नाम से अभिहित करते है। रीतिमुक्त से सीधा अर्थ हैं ये लोग रीति परम्परा के साहित्यिक बन्धनों और रूढ़ियों से मुक्त है। लेकिन रीतिमुक्त नाम ही विवाद रहित है। प्रमुख रीतिमुक्त कवि और उनके रचानाओं का नाम नीचे उपलब्ध हैं–

घनानंद– सुजान हित प्रबंध, वियोग–वेली, इश्क्लाता, ब्रजविलास, प्रेम–पत्रिका इत्यादि।

आलम– माधवानलकामकंदना, आलम केलि, सुदामा चरित, स्याम सनेही इत्यादि।

ठाकुर– ठाकुर ठसक और ठाकुर शतक इत्यादि।

बोधा– विरहवारिश और इश्कनामा इत्यादि।



2.6 सारांश

हिंदी साहित्य में रीतिकाल मुख्य तौर से दरबारी प्रवृत्तियों की प्रधानता का काल रहा है। इस युग के कवियों की व्यापक प्रवृत्ति रीति निरूपण रही है। रीति निरूपण और श्रृंगारिक प्रवृत्ति के साथ–साथ राजप्रशस्ति, भक्ति और नीति काव्य की प्रधानता इस काल की प्रमुख विशेषता है। रीतिकालीन विलासिता के कालों मे कुछ कवियों ने उससे अलग काव्य लिखने की कौशिश किये मगर वह भक्तिकालीन कवियों जैसा प्रसिद्ध नहीं हुए। मगर यह स्वीकार करना ही होगा की हिंदी साहित्य के इतिहास में इस काल का भी पर्याप्त योगदान रहा है।



2.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : सर्वांग निरूपक अर्थात जो कवि काव्यशास्त्र के प्रमुख सिद्धांतों, लक्षणों और काव्यांगों का विवेचन करते हैं। सर्वांग निरूपक कवियों ने काव्य के स्वरूप, रस, अलंकार, शब्द–शक्ति, ध्वनि, रीति, गुण–वृत्ति, दोष तथा छन्द आदि का विवेचन एक साथ किया है। अधिक जानकारी के लिए कृपया ऊपर इकाई में देखें।

प्रश्न 2 का उत्तर : इस शाखा के कवियों ने कवित्त प्रदर्शन के स्थान पर अलंकार का सामान्य ज्ञान करने के उद्देश्य से ही ऐसे ग्रंथों का निर्माण किया। अधिक जानकारी के लिए ऊपर इकाई में देखें।



2.8 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
3. लक्ष्मी लाल बैरागी, हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का इतिहास, संघी प्रकाशन, जयपुर।
4. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
6. राम खेलावन पाण्डेय, हिंदी साहित्य का नया इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
8. डॉ. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. डॉ. धीरेन्द्र वामा, हिंदी साहित्य (भाग 1 और 2), भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहाबाद।



2.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. रीतिकाल के प्रमुख कवियों के नाम उल्लेख कीजिए।
2. 'श्रृंगार निरूपक' कवि के नाम लिखिए।
3. रीतिमुक्त का दूसरा नाम क्या है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. रीतिकाल से आप क्या समझते है? रीतिकालीन पृष्ठभूमियों पर चर्चा कीजिए।
2. रीतिकाल में मूलत: क्या-क्या प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं- स्पष्ट कीजिए।
3. रीतिकाल का वर्गीकरण कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 3 रीतिकालीन गद्य साहित्य और उपलब्धियाँ

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 रीतिकालीन गद्यसाहित्य

3.3.1 ब्रजभाषा-गद्य

3.3.2 खढ़ीबोली-गद्य

3.3.3 दक्खिनी गद्य

3.3.4 राजस्थानी गद्य

3.3.5 अवधी गद्य

3.4 रीतिकालीन उपलब्धियाँ

3.5 सारांश

3.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

3.7 प्रस्तुत अध्याय से हमनें क्या सीखा

3.8 अधिक जानने के लिए पढ़े

3.8 अभ्यास प्रश्न

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़कर आप -

* रीतिकालीन गद्य साहित्य के बारें में आपको जानकारी मिलेगी।
* रीतिकालीन गद्य साहित्य के प्रमुख रचनाओं की जानकारी आपको प्राप्त होगी।
* सम्पूर्ण रीतिकाल की उपलब्धियों की जानकारी आपको हासिल होगा।

3.2 प्रस्तावना

जैसा कि हमने पूर्ववर्ती अध्यायों में जाना कि रीतिकाल में मूलत: कवियों ने आश्रयदाता राजाओं के अधीन श्रृंगारपरक काव्यों की रचना की थी और यह काल मुख्यत: दरबारी-काव्य के लिए प्रसिद्द है। परंतु यह वह दौर था जब भारत में धीर-धीरे गद्य का विकास हो रहा था, प्राय: सभी विधाओं में तत्कालीन भाषाओं में गद्य लिखे जा रहे थे। इस अध्याय में हम जानेंगे कि रीतिकाल में गद्य का स्वरूप कैसा था। हालाँकि गद्य साहित्य का विकास मूल रूप से आधुनिक काल में हुआ हैं, मगर इस काल में ब्रजभाषा, खड़ीबोली,

राजस्थानी, दक्खिनी, अवधी आदि भाषाओं में गद्य जैसा रूप विकसित होने लगा था। गद्य साहित्य परंपरा की विकास यात्रा में इस अंश का विशेष योगदान रहा हैं, अत: यह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता आ रहा है। साथ ही साथ इस पाठ में रीतिकाल की सम्पूर्ण उपलब्धियों के बारें में भी चर्चा की जाएगी।

3.3 रीतिकालीन गद्य साहित्य

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि रीतिकाल में पर्याप्त गद्यों लिखे गए थे; जिनमें कथा-कहानी, वार्ता, वर्णन, चरित्र, वचनिका, जीवनी, नाटक, निबंध, टीका-टिप्पणी आदि मिलते हैं। जहाँ धर्म, दर्शन, चिकित्सा, ज्योतिष, शकुनशास्त्र, सामुद्रिक, गणित, इतिहास, भूगोल, अस्त्र, चित्रकारी, मल्लविद्या तथा काव्यशास्त्र आदि शामिल हैं। आगे हम अलग अलग भाषा में लिखित रीतिकालीन गद्य रचनाओं की विस्तार रूप से चर्चा करेंगे।

3.3.1 ब्रजभाषा-गद्य

रीतिकाल की काव्य की भाषा में ब्रजभाषा का ही आधिक्य रहा हैं। यह तत्कालीन समय की लोकप्रिय जनभाषा भी है। अत: इस भाषा में गद्य का बीज पनपना आसान था; अन्य भाषा के गद्य साहित्य की तुलना में ब्रजभाषा-गद्य अधिक विकसित और समृद्ध था। इस युग में धार्मिक और समय उपयोगी गद्य के साथ साथ ललित गद्य की रचना भी हुई थी। साथ ही ब्रजभाषा में भारी मात्रा मंम टीका ग्रन्थों की रचना भी हुई थी। इस समय के ब्रजभाषा में लिखित गद्य का रूप कुछ इस प्रकार था- कथा, वार्ता, जीवनी, टीका-टिप्पण, वर्णन, पत्र, अनुवाद, छायानुवाद, आत्मचरित आदि। अत: यहाँ हम देख सकते हैं कि उस समय ब्रजभाषा में अलग अलग विधाओं में गद्य की रचना हो रही थी। रीतिकाल में रचित गद्यों का विषय कुछ प्रकार था- धर्म, दर्शन, चिकित्सा, ज्योतिष, शकुनशास्त्र, सामुद्रिक, गणित, इतिहास, भूगोल, अस्त्र, चित्रकारी, मल्लविद्या तथा काव्यशास्त्र आदि। इस संदर्भ में 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ वैष्णवन की वार्ता' का नाम बढ़े ही आदर पूर्वक लिया जाता हैं। इनमें से 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' की 1940 ई. की प्रति कांकरौली विद्या विभाग में सुरक्षित रखा गया है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में वल्लभाचार्य जी के शिष्यों और 'दो सौ वैष्णवन की वार्ता' में विट्ठलनाथ जी के शिष्यों का जीवनवृत संगृहित हैं। ये कथाएं गोकुलनाथ जी की कथित हैं, बाद में उनके शिष्यों ने इन्हें ग्रंथ का रूप प्रदान किया हैं। इस समय में लिखे गए कुछ और ग्रंथ हैं- 'गुसाई दामोदरदास संवाद', 'वनयात्रा', 'भावना-वचनामृत', 'उत्सव-भावना', 'रहस्य-भावना' आदि।

इसके अतिरिक्त जो गद्य रचे गए उन्हें तीन भागों में बांटा जा सकता हैं, यथा-सत्रहवीं शताब्दी- मीनराज प्रधान द्वारा रचित 'हरतालिका- कथा' (1669), अक्षर अनंत द्वारा लिखित 'अष्टांग योग'(1693); किसी अज्ञात रचनाकार लिखित 'कोककथा' और 'कोकमंजरी', दादुपंथी दामोदरदस द्वारा अनूदित 'मार्कंडेय'(1648); मेघराज प्रधान द्वारा

अनूदित 'अध्यात्मरामायण' आदि उल्लेखनीय हैं।

अठारहवीं शताब्दी – श्री हरिदास इस समय के चर्चित रचनाकार हुए; उनकी रचनाओं की संख्या अधिक हैं, जिनमें से प्रमुख हैं– 'चौरासी वैष्णवन की भावना वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की भावना वार्ता', 'सात स्वरूपन की भावना', 'नित्यलीला भावना', 'सेवाभावना', 'नित्यविनोद'। प्रियादास कृत 'सेवक जू कौ चरित्र'(ललित गद्य); दामोदर स्वामी द्वारा रचित 'भक्ति–विवेचन', लाडलीदास रचित 'सुधर्मबोधिनी', किसी अज्ञात लेखक द्वारा रचित 'ब्रह्मजिज्ञासा', 'वेदांत निर्णय', 'अश्वचिकित्सा', 'वैद्य–जीवन' आदि; सुरति मिश्र का छायानुवाद 'वैताल पच्चीसी'; वंशीधर का अनुवाद 'मित्र–मनोहर'(1717); आदि उल्लेखनीय हैं।

उन्तीसवीं शताब्दी – इस समय में अधिक से अधिक गद्य की रचना हुई थी। जिनमें लल्लुलाल अनूदित 'राजनीति', सेवाराम मिश्र द्वारा अनूदित 'भागवत', आलम कृत 'ग्रंथ संजीवन'; दुर्गाप्रसाद द्विवेदी कृत 'विवाह पद्धति', आदि। इनके अतिरिक्त श्री हरिराय, ब्रजभूषण, दामोदरस्वामी, प्रियादास, आदि भी इस युग के प्रमुख रचनाकार रहे हैं। रीतिकाल में धर्मीय तथा काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों की भी पर्याप्त मात्रा में रचना हुई थी। जहाँ चिंतामणि कृत 'शृंगारमंजरी', 'कविकुलकल्पतरु'; सुखदेव मिश्रा द्वारा लिखित 'पिंगल'; भिखारीदास द्वारा रचित 'काव्यनिर्णय' आदि विशेष हैं।



महत्वपूर्ण बिंदु –

महान ऋषि पतंजलि ने इस अवधारणा को अष्टांग योग के आठ अंगों, अर्थात यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के माध्यम से रेखांकित किया। जबकि योग कई लोगों के लिए आसन के बराबर है, यह योग के 8 अंगों में से केवल तीसरा अंग है।

रीतिकाल में टीका–साहित्य की प्रचुर मात्रा में रचा गया था। तुलसी काव्य तथा बिहारी–सतसई पर सबसे अधिक टीका–ग्रंथ उस समय लिखा गया था। कुछ उल्लेखनीय टीका–ग्रन्थों का नाम रचनाकारों के सहित प्रस्तुत हैं–प्रियादास : सुलोचनी टीका; हरिहर प्रसाद गीतावली की टीका, राजा रतनसेन : विनयपत्रिका की टीका, माथुर ब्राह्मण, अमरसिंह सुरति मिश्र और प्रतापसाही आदि ने बिहारी सतसई पर टीका ग्रन्थों की रचना की थी। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता हैं कि ब्रजभाषा का गद्य साहित्य अत्यंत समृद्ध था।

3.3.2 खड़ीबोली–गद्य

रीतिकाल में शुद्ध खड़ीबोली साहित्य की रचना नहीं मिलती है, इसके स्थान पर ब्रजभाषा मिश्रित खड़ीबोली में लिखित गद्य रचनाएं प्राप्त होती है। आधुनिक काल से ही शुद्ध खड़ीबोली की रचनाएं प्राप्त होती हैं। इस समय की रचनाओं पर ब्रज भाषा के साथ–

साथ पूर्वी हिंदी, राजस्थानी अथवा पंजाबी भाषा का प्रभाव परिलक्षित होता है। खड़ीबोली में उस समय धर्म, दर्शन, चिकित्सा, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, गणित, सामुद्रिक, शकुन आदि। ललित गद्य विधाओं की रचना प्राप्त होती हैं। इस समय ललित ग्रंथों की रचना दुर्लभ है। 19वीं शताब्दी से पूर्व की खड़ीबोली गद्य में ब्रजभाषा, फारसी और पंजाबी भाषा का अधिक प्रभाव रहा हैं। कुछ महत्वपूर्ण रचनाओं का नाम कुछ इस प्रकार हैं – धार्मिक – 'एकादशी महिमा', 'सीधा रास्ता' (इस्लाम विषयक रचना); चिकित्सा विषयक – 'बाजनामा'; शकुन शास्त्र – 'सकुनावली' आदि उल्लेखनीय हैं। इस समय में वर्णनात्मक, कथात्मक तथा निबंधात्मक रचनाओं का अभाव परिलक्षित होता हैं। हालांकि कुछ पत्र अवश्य मिले हैं।

इसके अतिरिक्त सिक्ख गुरु हरि जी दास कृत 'पोथी हरि जी'; 'जन्म साथ कबीर भगति जी की' (जहां कबीर की जीवनी और उनकी वाणियों की व्याख्या मिलती हैं)। इस समय के खड़ीबोली के विशिष्ट गद्यकार रहें – टोडरमल जैन, द्वीपचंद्र जैन, शाह जी महाराज, हरि जी, राम प्रसाद निरंजन, टेकचंद जैन, मुंशी सदासुख राय आदि। मुंशी सदासुख राय द्वारा अनुदित 'विष्णु पुराण' अथवा 'भागवत' उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त खड़ी बोली गद्य साहित्य में अनेक टीका टिप्पणियां भी प्राप्त हुआ हैं। 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में जो खड़ीबोली गद्य की रचनाएं हुई उनमें फोर्ट विलियम कॉलेज का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस कॉलेज से जुड़े हुए व्यक्तियों द्वारा लिखित ग्रंथों की तालिका कुछ प्रकार हैं – सदल मिश्र द्वारा रचित 'नाचिकेतोपाख्यान' एवं रामचरित्र, लल्लूलाल कृत 'प्रेम सागर' (ब्रजभाषा के अनुवाद का रूपांतरण है), लालचंद्रिका टीका, बेताल पच्चीसी, भक्तमाल टीका आदि। अत: यह कहा जा सकता है कि रीतिकाल में ब्रजभाषा के गद्य साहित्य के बाद सबसे अधिक रचना खड़ीबोली भाषा में हुई थी, जिनका एक महत्वपूर्ण योगदान हिंदी गद्य साहित्य में रहा है। क्योंकि खड़ीबोली हिंदी के उसे रूप से ही आधुनिक हिंदी का प्रारूप बन रहा था और आगे जाकर वही हिंदी साहित्य का मूल आयाम बनने वाला था।

3.3.3 दक्खिनी गद्य

रीतिकाल में दक्खिनी गद्य साहित्य में पूर्व परंपरा के अनुसार सूफी तथा इस्लामी धर्म ग्रंथो का अनुवाद हुआ और साथ ही साथ धर्म एवं दर्शन विषय पुस्तकों की रचना भी की गई। अनुवाद के अलावा इतिहास तथा चिकित्सा विषयक रचना और पत्र आदि भी दक्षिणी गद्य में प्राप्त होते हैं। आबिदशाह अलहसन उलहुसेनी कृत 'गुलजारूस्सालिकीन' तथा 'कंजूल मोमिनीन'; मीरां याकूब अनूदित 'शमायलूल अटकिया'; सैयद शाह मोहम्मद कादरी लिखित 'रिसाले वजूरिया'; अब्दुल हमीद का 'रिसाले तसव्वुफ' आदि दक्खिनी गद्य साहित्य के धार्मिक ग्रंथ रहे हैं। इसके अतिरिक्त कई अज्ञात लेखकों ने उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना की है उनमें से कुछ प्रमुख ग्रंथों का नाम इस प्रकार हैं : 'तूतीनामा', 'अनवारे सुहेली', तारीख जापान, हैदरनामा, गुलदस्तए हिंद, आदि। इनमें से अधिकतर रचनाओं की भाषा

शैली 'उर्दू' थी । दक्खिनी भाषा का शब्द रूप विधान और वाक्य विन्यास आधुनिक खड़ी बोली भाषा के निकट जान पड़ती है। अत: यह कहां जा सकता है कि दक्खिनी गद्य साहित्य का रीतिकालीन गद्य साहित्य के भंडार में अल्प मात्रा में परंतु गंभीर योगदान रहा है।

3.3.4 राजस्थानी गद्य

रीतिकाल राजस्थानी गद्य का एक अनोखा और सुंदर रूप देखा जा सकता है। कई विद्वानों का यह मानना है कि रीतिकालीन गद्य साहित्य है उसे समय के ब्रज भाषा के गड्ढे से भी ऊंचा स्थान रखता है। राजस्थानी गद्य साहित्य की प्रमुख काथात्मक विधा है वातों, वार्ता; इसके अतिरिक्त उस समय राजस्थान के मारवाड़ी गद्य की एक प्रमुख वचनिका प्रचलित थी। वचनिका का अर्थ होता है गद्य और पद्य में वर्णित होना। राजस्थानी गद्य रचनाओं के प्रमुख विषय रहे हैं- इतिहास, धर्म, अध्यात्म, कोकशास्त्र, शकुन, सामुद्रिक,ज्योतिष, वैद्य संबंधीय, यंत्र तंत्र नीति गणित आदि।

राजस्थानी साहित्य में बात साहित्य को सबसे अधिक प्रसिद्धि मिली है, जो आधुनिक कहानी विधा के काफी नजदीक पड़ती है। विषय की दृष्टि से यह छह प्रकार के हैं- प्रेमपरक, वीरतापूर्ण, हास्यमय, धार्मिक, शांतरस परक, स्त्री चातुर्य विषयक, अद्भुत रस पूर्ण। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिकता की दृष्टि से भी बाद साहित्य को तीन भागों में बांटा गया है- ऐतिहासिक, अर्ध-ऐतिहासिक और काल्पनिक। केवल यही नहीं इसकी विवरण की शैली को लेकर भी इसके भाग पाए जाते हैं; जो कुछ इस प्रकार के हैं घटनापरक, व्यक्तिपरक, वर्णनपरक और विचारपरक। उसे समय के प्रसिद्ध वात रचनाओं का नाम कुछ इस प्रकार हैं - रतना हमीर री वात'; 'राव अमरसिंह री वात'; 'ढोला मारवाणी री वात'; 'गोराबादल री वात'; 'बीरबल री वात' आदि । राजस्थानी गद्य साहित्य में ललित विधा की रचना का अभाव देखा जाता है। उसे समय के कुछ प्रमुख ऐतिहासिक ग्रंथों का नाम इस प्रकार हैं - उदयपुर री ख्यात'; 'बीकानेर री ख्यात'; 'बाकींदास री ख्यात'; 'पीढ़ियां' आदि। इसके अतिरिक्त इस भाषा की गद्य में राजकीय और व्यक्तिगत पत्र, जन्म पत्री आदि भी पाए जाते हैं।

राजस्थानी गद्य में एक और प्रसिद्ध विद्या थी बालावबोध, इस विधा के रचनाकारों में हंसराज, कुंवर,विजय,यशविजय उपाध्याय, सुखसागर, रामविजय आदि नाम उल्लेखनीय हैं; जिन्होंने अनेक टीकाओं की रचना की हैं। इसके अतिरिक्त राजस्थानी गद्य साहित्य में अनुवाद और छायावाद भी पाए जाते हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि गद्य साहित्य की विधाओं एवं मान्यताओं की दृष्टि से राजस्थानी गद्य साहित्य सफल एवं समृद्ध रही है।

3.3.5 अवधी गद्य

रीतिकाल में शुद्ध अवधी भाषा में गद्य की रचना अत्यंत दुर्लभ है। यहां जो भी

लिखा गया वह ब्रजभाषा और खड़ी बोली मिश्रित अवधी में लिखा गया था। इस समय के प्राप्त रचनाएं कुछ इस प्रकार हैं- भानु मिश्र द्वारा रचित रस विनोद (जो गद्य और पद्य दोनों में रचित है : (1793 ई.); रामचरण दास द्वारा रचित 'मानस टीका'; गौतमऋषि- 'सगुणावती'(1822); प्रियादास कृत 'व्यवहारपाद'; महाराज विश्वनाथ सिंह द्वारा रचित 'कबीर- बीजक टीका' तथा 'परम धर्म निर्णय' आदि उल्लेखनीय हैं। अल्प मात्रा में ही सही परंतु रीतिकालीन गद्य साहित्य को अवधी भाषा का योगदान अवश्य रहा है; जिसे हम नकार नहीं सकते हैं।

3.4 रीतिकालीन उपलब्धियाँ

रीतिकाल मूलत: शृंगारिक काव्य का काल रहा है, यहां तीन मुख्य काव्य धाराएं प्रचलित थी रीतिबद्ध रीति सिद्ध और रीतिमुक्त। तीनों काव्य धाराओं में अनेक प्रसिद्ध रचनाएं रची गई, जिन्होंने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। रीतिकाल का नाम लेते ही कवि केशवदास, चिंतामणि, भूषण, मतिराम, बिहारी, घनानंद बोधा, आलम आदि कवियों का नाम लेना अनिवार्य हो जाता हैं। इन सभी कवियों की और एक खास बात यह थी कि यह सब किसी न किसी राजा के दरबारी कवि रहे थे। रीतिकाल के सभी कवियों ने मुख्यत: शुद्ध ब्रजभाषा को अपनाया साथ ही उनकी कविताओं में अरबी फारसी का प्रभाव देखा जाता है। कुछ कवियों ने अवधी भाषा में भी काव्य की रचना की थी।

अब आते हैं रीतिकालीन गद्य के क्षेत्र में रीतिकाल वह समय था जब गद्य साहित्य का विकास प्रारंभ हो गया था। लगभग सभी गद्य विधाओं में साहित्यकारों ने अपना प्रयास शुरू कर दिया था। ललित गद्य साहित्य के अलावा प्राय सभी प्रकार के गद्य साहित्य की एक समृद्ध परंपरा यहां पायी जाती हैं।



3.5 सारांश

रीतिकालीन गद्य साहित्य अत्यंत समृद्ध हैं। आधुनिक काल की प्रारंभ का यह समय गद्य साहित्य का विकास का काल रहा है। जहां देश के भिन्न प्रांतों में अलग-अलग भाषा में गद्य साहित्य की रचना हो रही थी। उनमें से सबसे ज्यादा गद्य ब्रज भाषा में लिखे गए, ब्रजभाषा में अनेक साहित्यकारों ने गद्य लिखा और उनमें अनेक विषयों का समायोजन भी हुआ था। इस भाषा में केवल ललित ग्रंथों का ही अभाव देखा जाता हैं। अब आते हैं खड़ीबोली भाषा के गद्य की तरफ; हमने पाया कि यह बहुत बड़ा दौड़ था जहां शुद्ध खड़ीबोली भाषा का प्रयोग नहीं हो रहा था और उसके स्थान पर ब्रजभाषा पंजाबी भाषा आदि के प्रभाव से खड़ीबोली प्रभावित थी। परंतु खड़ीबोली में भी पर्याप्त गद्य की रचना हुई। ठीक उसी प्रकार राजस्थानी और अवधी भाषा में भी तत्कालीन समय में अनेक गद्यों की रचना हुई। रीतिकाल में दक्षिणी भाषा में भी गद्य रचे गए, जो अपने आप में एक समृद्ध

इतिहास रहा है। रीतिकालीन गद्य परंपरा की एक और विशिष्ट बात यह रही है कि यहां उर्दू भाषा शैली का प्रभाव रहा है और गद्य में भी पद्य का मिश्रण रहा है। यहां मूलत: धर्म, दर्शन, शकुन, सामुद्रिक, ज्योतिष, आदि विषयों पर गद्य रचे गए। टीका-टिप्पणी भी खूब हुई इस काल में, साथ ही अनुवाद और छायानुवाद की दृष्टि से भी इस काल का गद्य साहित्य महत्वपूर्ण माना जाता हैं। कुल मिलाकर यह देखा जा सकता है कि रीतिकाल गद्य साहित्य का इतिहास समृद्ध है और हिंदी साहित्य के इतिहास में इसका एक महत्वपूर्ण स्थान है। अनेक साहित्यकार जो पहले कई हुए उन्होंने गद्य रचना करते हुए यहां प्रमाणित किया है कि वह केवल काव्य के क्षेत्र में नहीं गद्य के क्षेत्र में भी पारदर्शी है।

3.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : रीतिकाल का खड़ी बोली का गद्य ब्रजभाषा के साथ पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी या पंजाबी से प्रभावित है। ललित साहित्य की अपेक्षा इस काल में भी धर्म, दर्शन, चिकित्सा, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, सामुद्रिक और गणित जैसे विषयों पर लिखा गया गद्य साहित्य अधिक था। अधिक जानकारी के लिए कृपया इकाई में देखें।

प्रश्न 2 का उत्तर : इस काल में जितना गद्य साहित्य राजस्थानी भाषा में रचा गया उतना ब्रजभाषा में भी नहीं रचा गया। ब्रज भाषा के गद्य में रचे साहित्य की तरह राजस्थानी भाषा में भी गद्य में अनेक रूपों में गद्य की रचना हुई। वात, वार्ता, वचनिका, वर्णन दवावैत , पत्र, वंशावली, पट्टावली, विगत, पीढ़ी आदि में गद्य का सुन्दर उपयोग हुआ है। इनमें कुछ रचनाएं इतिहास विषयक हैं तथा ललित-विद्या के रूप में स्वीकार की गई हैं। राजस्थानी इन गद्य रचनाओं के मुख्य विषय- इतिहास, धर्म, ज्योतिष, वैद्यक, नीति गणित, शकुन-अपशकुन, सामुद्रिक, आदि हैं। राजस्थानी साहित्य में वात साहित्य प्रमुख है। यह विधा आधुनिक कहानी की ही तरह है अधिक जानकारी के लिए इकाई में देखें।

3.7 प्रस्तुत अध्याय से हमने क्या सीखा

इस इकाई को पढ़कर हमने यह सीखा कि -

1. रीतिकाल में पर्याप्त मात्रा में गद्य साहित्य की रचना की गई हैं।
2. उन गद्यों में विषय की विविधता रही है, जहां मूलत: धर्म, दर्शन, शकुन, सामुद्रिक, ज्योतिष, आदि विषयों पर गद्य रचे गए ।
3. रीतिकाल में ऐसे अनेक साहित्यकार हुए जिन्होंने काव्य के साथ-साथ गद्य परंपरा में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं।

4. इस युग में ब्रजभाषा मैं पर्याप्त मात्रा में गद्य की रचना हुई हैं, इस क्रम में अगले श्रेणी में खड़ी बोली भाषा का नाम आता है, उसके बाद क्रमशः राजस्थानी दक्खिनी और अवधी भाषा में लिखित गद्य साहित्य पाए जाते हैं।
5. रीतिकाल केवल पद्य का काल ही नहीं है बल्कि यहां उत्कृष्ट गद्य भी रचे गए ।



3.8 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
3. लक्ष्मी लाल बैरागी, हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का इतिहास, संघी प्रकाशन, जयपुर।
4. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
6. राम खेलावन पाण्डेय, हिंदी साहित्य का नया इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
8. डॉ. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. डॉ. धीरेन्द्र वामा, हिंदी साहित्य (भाग 1 और 2), भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहाबाद।



3.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. 'चौरासी वैष्णवन' किसकी रचना है ?
2. 'मानस टीका' के रचनाकार कौन थे ?
3. विनयपत्रिका की टीका किसने लिखी ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. रीतिकालीन खड़ी बोली साहित्य का स्वरूप स्पष्ट करें।
2. ब्रजभाषा के प्रमुख गद्य एवं उनके रचनाकारों का एक सम्यक परिचय प्रदान करें।

3. दक्खिनी हिंदी से आप क्या समझते हैं? दक्खिनी गद्य का के योगदान के बारे में लिखिए।

4. हिंदी के गद्य साहित्य में रीतिकालीन गद्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है– प्रस्तुत कथन की पुष्टि कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 4 हिंदी साहित्य का आधुनिक काल

इकाई की रुपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 आधुनिक काल की अवधारण

4.4 उपविभाग

4.5 परिस्थितियाँ

4.6 सारांश

4.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

4.8 अधिक जानने के लिए पढ़े

4.9 अभ्यास प्रश्न

4.1 उद्देश्य

यह इकाई हिन्दी साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल से संबन्धित है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

* हिन्दी साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल के विषय में जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।
* आधुनिक काल की सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियों के विषय में जान पाएंगे।
* साहित्य के विकास में आधुनिक काल की भाव–भंगिमाओं से भी ज्ञात हो सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना

आधुनिक काल के साहित्येतिहास लेखन में काल निर्धारण और उसका सीमांकन सबसे अधिक जटिल समस्या है। ऐतिहासिक कालखण्ड का आरम्भ कब होता है, इसे प्रमाणपूर्वक नहीं बताया जा सकता। सभी कालखण्ड अगले कालखण्ड से कई दृष्टिकोणों में अलग होता है। परिवर्तन की प्रक्रिया तो कालों से चलती आ रही है, पर नये कालखण्ड का निर्धारण तब होता है, जब बदलाव के चित्र हमारी आर्थिक–सांस्कृतिक स्थितियों, काल–रूपों तथा भाषा में स्पष्टत: दिखाई देने लगते हैं। इसलिए साहित्येतिहास के लेखन में जो काल–निर्धारण किया जायेगा, वह लचीला होगा। हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल के विकास का क्रम एक शताब्दी पहले से ही प्रारम्भ हो गया था– बदलाव के स्पष्ट चिह्न उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में दिखाई पड़ने लगे थे। संयोग है कि हिन्दी

साहित्य में आधुनिक जीवन-बोध के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म उन्नीसवीं शती के ठीक मध्य में सन् 1850 में हुआ। अत: इतिहास-लेखकों ने इस वर्ष को ही आधुनिक हिन्दी साहित्य के आरम्भ का वर्ष मान लिया। किन्तु इतिहास की गतिमानता या बदलाव में यह वर्ष स्वयं किसी तरह की भूमिका नहीं अदा करता। इतिहास के काल-विभाजन की रेखा कम-से-कम दो विभिन्न प्रवृत्तियों को स्पष्टत: अलग करनेवाली तथा इस अलगाव के लिए स्वयं भी बहुत कुछ उत्तरदायी होनी चाहिए। यदि सन् 1857 को आधुनिक काल का प्रारम्भिक बिन्दु मान लिया जाये, तो उंपर्युक्त दोनों शर्तें पूरी हो जाती हैं। सन् सत्तावन दो विरोधी ताकतों की टकराहट का काल था- सामन्तवादी और पूंजीवादी। सामन्तवादी शक्तियां अपनी सारी ताक़त लगाकर सदा के लिए समाप्त हो गयीं। सामन्तवाद की सम्पूर्ण सम्भावनाएं खत्म होने के बाद देश के प्रबुद्ध वर्ग ने नये सिरे से सोचना शुरू किया और अंग्रेज शासकों ने भी इस देश की परम्परा को समझकर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का नवीनीकरण किया।



महत्वपूर्ण बिंदु –

खड़ीबोली (या खरी बोली) वर्तमान हिन्दी का एक रूप है जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्तमान हिन्दी भाषा की सृष्टि की गई और फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है। दूसरे शब्दों में, वह बोली जिसपर ब्रजभाषा या अवधी आदि की छाप न हो, ठेठ हिन्दी।

4.3 आधुनिक काल की अवधारणा

आधुनिक शब्द दो अर्थों- 'मध्यकाल से भिन्नता' और 'नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण' की सूचना देता है। मध्यकाल अपने अवरोध, जड़ता और रूढ़िवादिता के कारण स्थिर और एक रस हो चुका था। एक विशिष्ट ऐतिहासिक प्रक्रिया ने उसे पुन: गत्यात्मक बनाया। मध्यकालीन जड़ता और आधुनिक गत्यात्मकता को साहित्य और कला के माध्यम से समझा जा सकता है। रीतिकाल में कला और साहित्य अपने-अपने कथ्य, अलंकृर्ति और शैली में एकरूप हो गये थे। वे घोर श्रृंगारिकता के बंधे घाटों से बह रहे थे। न छन्दों में वैविध्य था और न विन्यास में- एक ही प्रकार के छन्द एक ही प्रकार के ढंग। आधुनिक काल में बंधे हुए घाट टूट गये और जीवन की धारा विविध स्रोतों में फूट निकली। साहित्य मनुष्य के बृहत्तर सुख-दु:ख के साथ पहली बार जुड़ा। आधुनिक शब्द से जो दूसरा अर्थ ध्वनित होता है, वह है- इहलौकिक दृष्टिकोण। धर्म, दर्शन, साहित्य, चित्र आदि सभी के प्रति नये दृष्टिकोण का आविर्भाव हुआ। मध्यकाल में पारलौकिक दृष्टि से मनुष्य इतना अधिक आच्छन्न था कि उसे अपने परिवेश की सुध ही नहीं थी, पर आधुनिक युग में वह अपने पर्यावरण के प्रति अधिक सतर्क हो गया। आधुनिक युग की पीठिका के रूप में इस

देश में जिन दार्शनिक चिन्तकों और धार्मिक व्याख्याताओं का आविर्भाव हुआ उनकी मूल चिन्ताधारा इहलौकिक ही है। सुधार, परिष्कार और अतीत का पुनराख्यान नवीन दृष्टिकोण की देन है। आधुनिक युग की ऐतिहासिक प्रक्रिया का ही परिणाम है कि साहित्य की भाषा ही बदल गयी- ब्रजभाषा की जगह खड़ीबोली ने ले ली।

4.4 उपविभाग

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक काल का जो उप-विभाजन किया है, वह एकसूत्रता के अभाव में विसंगतिपूर्ण हो गया है। उन्होंने आधुनिक काल को दो खण्डों में बांटा है- गद्य-खण्ड और काव्य-खण्ड। ये दोनों खण्ड एक-दूसरे से इतने पृथक हैं कि इनमें एकता लाना मुश्किल था। दोनों खण्डों को दो-दो प्रकरणों में बांटा गया है। गद्य के पहले प्रकरण में ब्रजभाषा-गद्य और खड़ीबोली-गद्य का विवेचन है। दूसरे प्रकरण में गद्य-साहित्य का आविर्भाव विश्लेषित है। इसे फिर तीन उत्थानों में विभाजित किया गया है- प्रथम, द्वितीय और तृतीय। काल-खण्ड में भी दो प्रकरण हैं- पुरानी काव्यधारा और नयी धारा। नयी धारा के भी तीन उत्थान हैं- प्रथम, द्वितीय और तृतीय। शुक्ल जी के गद्य-खण्ड और काव्य-खण्ड एक-दूसरे से सर्वथा अलग हैं, एक की प्रवृत्ति का दूसरे की प्रवृत्ति से कोई तालमेल नहीं है। ऐसा लगता है कि मानो गद्य-खण्ड में एक प्रवृत्ति क्रियाशील है, तो काव्य-खण्ड में दूसरी। उदाहरणार्थ, काव्य-खण्ड के दूसरे प्रकरण के तृतीय उत्थान (काव्य में जिसे छायावाद के नाम से अभिहित किया जाता है) तथा गद्य-खण्ड के द्वितीय प्रकरण के तृतीय उत्थान में कोई एकरूपता निरूपित नहीं की जा सकी है। इस खण्ड-दृष्टि के कारण इतिहास का निरंतरता ओझल हो गयी है। शुक्ल जी के परवर्ती इतिहासकारों ने प्राय: शुक्ल जी का अनुगमन किया। आधुनिक हिन्दी-साहित्य में छायावाद-युग सर्वमान्य हो गया है। इसको केन्द्रवर्ती बिन्दु मानकर इस काल का उपविभाजन करना अधिक सुविधाजनक होगा। छायावाद-काल के पूर्व हिन्दी- साहित्य परिष्कार की दो मंज़िलों से गुजर चुका था- पुनर्जागरण और सुधार। राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द आदि के कारण जो पुनर्जागरण आया वह ऐतिहासिक तथ्य हो गया। इसका सीधा प्रभाव साहित्य पर पड़ा। साहित्य अपने नवीन पर्यावरण से जुड़कर मध्यकालीन प्रवृत्तियों से पृथक् हो गया। अत: आधुनिक काल की पहली मंजिल को पुनर्जागरण- काल कहना उचित है। दूसरी मंज़िल पर साहित्यकार अपने कथ्य, रूपाकार और भाषा के सुधार- परिष्कार में संलग्न दिखाई पड़ते हैं। अत: इसे सुधार-काल की संज्ञा दी जानी चाहिए। स्थूल रूप से छायावाद का समय् सन् 1918 से 1938 तक माना गया है। संक्षेप में, आधुनिक काल के उपविभाजन का प्रारूप निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत किया गया है -

1. पुनर्जागरण-काल (भारतेन्दु-काल) 1857-1900 ई.
2. जागरण-सुधार-काल (द्विवेदी-काल) 1900-1918 ई.
3. छायावाद-काल 1918-1938 ई.

4. छायावादोत्तर-काल

(क) प्रगति-प्रयोग-काल 1938-1953 ई

(ख) नवलेखन-काल 1953 ई. से अब तक

4.5 परिस्थितियाँ

राजनीतिक स्थिति- हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का आरंभ सन् 1857 में हुआ, पर भारतवर्ष के आधुनिक बनने की प्रक्रिया की शुरुआत एक शताब्दी पूर्व (1757 ई.) तभी हो गयी थी। जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में हराया था। सिराजुद्दौला की हार के बाद सम्पूर्ण बंगाल पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। 1764 ई. में बक्सर के युद्ध में मुगल-सम्राट शाहआलम भी पराजित हुआ 1765 में कड़ा के युद्ध में उसकी रही-सही शक्ति भी समाप्त हो गयी। सम्राट ने अब बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अंग्रेजों को बख्श दी। किन्तु सम्पूर्ण देश पर आधिपत्य जमाने के लिए अंग्रेजों को दो अन्य शक्तियों को पराजित करना शेष था। वे शक्तियां थी - मराठे और सिक्ख। सिक्ख तो पंजाब की सीमा में थे, परन्तु मराठों का प्रभाव बहुत व्यापक था। पारस्परिक फूट और संघर्ष के कारण असी (1803) और लासवारी (1803) के युद्धों में मराठे विजित हो गये और उनकी संघशक्ति समाप्त हो गयी। 1849 ई. में सिक्खों को पराजित करने के बाद सम्पूर्ण देश अंग्रेजों के अधीन हो गया। 1856 ई. में अवध भी अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। इस विजय के कारण अंग्रेजों का मदोन्मत्त हो जाना स्वाभाविक था। उनकी नीतियों से असन्तुष्ट देशी राजाओं ने एकजुट होकर 1857 ई. में व्यापक स्तर पर विद्रोह किया। फलस्वरूप ईस्ट इंडिया कंपनी समाप्त कर दी गयी और भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया। अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक, शैक्षणिक और प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया। इस देश के लोग भी नये सन्दर्भ में कुछ नया सोचने और करने के लिए बाध्य हुए। साहित्य मनुष्य के बृहत्तर सुख-दु:ख के साथ पहली बार जुड़ा। यह प्रक्रिया भारतेन्दु के समय में हुई - वह भी गद्य के माध्यम से। आधुनिक जीवन-चेतना की चिनगारियां जैसी गद्य में दिखाई पड़ीं, वैसी पद्य में नहीं। नया युग अपनी अभिव्यक्ति के लिए नयी भाषा की खोज कर रहा था। ब्रजभाषा इसके लिए उपयुक्त नहीं थी। इसलिए आधुनिक काल में ब्रजभाषा-काव्य के माध्यम से पुरानी संवेदनाएं ही अभिव्यक्ति पाती रहीं। खड़ीबोली-गद्य आधुनिक चेतना के फलस्वरूप ही सक्षम बन पड़ा।

साहित्य का इतिहास बदलती हुई अभिरुचियों और संवेदनाओं का इतिहास होता है, जिसका सीधा संबंध आर्थिक और चिन्तनात्मक परिवर्तन से है। कुछ लोगों की दृष्टि से आर्थिक परिवर्तनों के साथ साहित्यिक परिवर्तनों का तालमेल बैठा देना ही साहित्य का इतिहास होता है, कुछ लोग संस्कृति के धरातल पर ही अभिरुचियों का विकास-क्रम निर्धारित करते हैं। वस्तुत: आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों में पेचीदा संबध है। स्थूल रूप से दोनों में कारण-कार्य-सम्बन्ध स्थापित करके सरलीकरण नहीं किया जा सकता।

अत: साहित्येतिहास के सन्दर्भ में दोनों के संबंधों और योगदान का विवेचन अतिरिक्त अवधानता की अपेक्षा रखता है।

आधुनिक काल के पूर्व भारतीय गांवों का आर्थिक ढांचा प्राय: अपरिवर्तनशील और स्थिर रहा, गांव अपने आपमें स्वत: पूर्ण आर्थिक इकाई थे। इस अपरिवर्तनशीलता को लक्ष्य करते हुए सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने लिखा है गांव छोटे-छोटे गणतन्त्र थे। उनकी अपनी आवश्यकताएं गांव में पूरी हो जाती थीं। बाहरी दुनिया से उनका कोई संबंध नहीं था। एक के बाद दूसरा राजवंश आया, एक के बाद दूसरा उलटफेर हुआ हिन्दू; पठान, मुगल, सिक्ख, मराठों के राज्य बने और बिगड़े, पर गांव वैसे के वैसे ही बने रहे। गांव की जमीन पर सबका समान अधिकार था। किसान खेती करता था, लुहार, बढ़ई, कुम्हार, नाई, धोबी, तेली आदि गांव की अन्य आवश्यकताएं पूरी करते थे। पेशा जाति के अनुसार निश्चित होता था। एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति का पेशा नहीं करता था, क्योंकि इसके लिए वह स्वतन्त्र नहीं था। नगर और गांव अपनी-अपनी इकाइयों में पूर्ण और एक-दूसरे से असंबद्ध थे। नगर तीन तरह के थे- राजनीतिक महत्व के नगर, धार्मिक नगर और व्यापारिक नगर। नगरों में मूल्यवान वस्तुओं का निर्माण होता था। रत्नजटित आभूषणों, बारीक सूती रेशमी वस्त्रों, हाथीदांत की मीनाकारी, वस्त्रों की रंगाई आदि के लिए इस देश की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति थी। पर इन वस्तुओं की खपत धनी वर्ग में होती थी- विशेष रूप से राजाओं, सामन्तों, श्रेष्ठियों आदि में। नगरों की औद्योगिक इकाईयां सामान्य वस्तुओं का निर्माण नहीं करती थीं। गांव का घरेलू उद्योग अलग था और नगरों का अलग। अंग्रेज व्यापारियों ने इस देश को अपना बाज़ार बनाने के लिए यहां के बारीक धन्धों का बहुत कुछ नष्ट कर दिया। जो कुछ बाकी बचे थे, वे नयी सामाजिक व्यवस्था के कारण नष्ट हो गये।

अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ-साथ इस देश की सामाजिक संघटना में विघटन और परिवर्तन लक्षित होने लगा, यों अंग्रेजों की विजय की जिम्मेदारी यहां की स्थिर आर्थिक व्यवस्था पर नहीं है। अनेक जातियों-उपजातियों में विभक्त इस देश में पारस्परिक एकता का सर्वदा अभाव रहा है। विदेशी मुसलमानों की विजय का कारण भी यही था, और अंग्रेजों की विजय का भी ! आज भी स्थिति वही है, जबकि एक सीमा तक देश का आधुनिकीकरण हो गया है, पुरातन आर्थिक व्यवस्था के छिन्न-भिन्न होने पर जाति-प्रथा शिथिल तो हुई, पर मिट नहीं सकी। आधुनिक साहित्य में इस प्रथा पर करारी चोट की गयी है। जो आर्थिक परिवर्तन अंग्रेजों द्वारा ले जाया गया, वह मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा सम्भव नहीं था। इनके आगमन से सामाजिक रीति-नीतियों में कहीं संकोच और कहीं विस्तार दिखाई पड़ा। मुसलमान यायावर थे और सामाजिक विकास की दृष्टि से वे पिछड़े हुए थे। उनकी स्थिति पूर्व-सामन्तीय थी। इसलिए वे विजयी होकर भी यहां की उच्चतर सम्यता से विजित हो गये और समाज के ढांचे में कोई बुनियादी फर्क नहीं ला सके। आर्थिक इकाइयों में यथास्थिति बनी रही। अंग्रेज सामन्तीय व्यवस्था से आगे बढ़कर पूंजीवादी व्यवस्था अपना चुके थे। सामाजिक विकास की दृष्टि से वे यहां के लोगों से एक मंजिल आगे थे। इसलिए आर्थिक व्यवस्था को परिवर्तित करने में उन्हें सफलता

प्राप्त हुई। किन्तु, इसे उनकी कृपा नहीं कहा जा सकता; इसमें उनका स्वार्थ था। गांव की जमीन का बन्दोबस्त करने के कारण उन्हें थोड़े लोगों से ही मालगुज़ारी मिल जाती थी। जमींदारों और बड़े-बड़े जोतदारों का एक ऐसा रुतबा खड़ा हुआ जो अंग्रेजों की आखिरी विदाई के समय तक उनकी सहायता करता रहा। अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के लिए इस देश को लूटा और यहां के व्यापार को नष्ट किया। लॉर्ड कॉर्नवालिस ने सन 1793 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा में जमींदारी प्रथा लागू की। बाद में बम्बई, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश के कुछ इलाकों में भी यह व्यवस्था आरम्भ की गयी। सन् 1820 में सर टॉमस मुनरो ने इस्तमरारी बन्दोबस्त लागू करके जमीन को व्यक्तिगत संपत्ति के रूप में बदल दिया। जमींदार और जोतदार दोनों ही जमीन का क्रय-विक्रय कर सकते थे। इसके पहले जमीन को न तो खरीदा जा सकता था और न ही बेचा जा सकता था क्योंकि उस पर व्यक्ति का स्वामित्व नहीं था। खेत के व्यक्तिगत संपत्ति हो जाने पर खेती का व्यावसायिक हो जाना स्वाभाविक था। पहले कृषि का उत्पादन गांव में ही रह जाता था, किन्तु अब बाज़ारों में भी आने लगा। यातायात की सुविधा बढ़ने पर उत्पादन की किस्म पर भी प्रभाव पड़ा। खेतों में उन वस्तुओं का उत्पादन अधिक किया जाने लगा जो व्यवसाय की दृष्टि से अधिक लाभप्रद थीं। रुपये के चलन से भी व्यावसायिकता में अभिवृद्धि हुई। पर किसानों की स्थिति नहीं सुधर सकी-उन्हें एक ओर सरकारी मालगुज़ारी अदा करने की चिन्ता रहती थी, दूसरी ओर महाजन की ऋण-अदायगी की। समय-समय पर मालगुजारी की दर बढ़ा दी जाती थी, फलस्वरूप वे महाजनों के चंगुल में बुरी तरह फंस जाते थे। महाजनी सभ्यता का जाल फैलाने का श्रेय अंग्रेजों को ही है। आये दिन अकाल भी पड़ते रहते थे, किन्तु अकाल-पीड़ितों की रक्षा करने में अंग्रेज अधिकारी असमर्थ थे। कर के बोझ और अकाल, महामारी आदि की भयंकरता का प्रचुर उल्लेख भारतेन्दु तथा उनके समसामयिक लेखकों के साहित्य में मिलता है।

पहले की सरल ग्राम-व्यवस्था में पारस्परिक झगड़ों का निपटारा पंचायतों में हो जाता था। नयी अर्थ-व्यवस्था के कारण पारस्परिक सबंध जटिल हो गये। अब पंचायतों द्वारा उनका फैसला नहीं हो सकता था। ऐसी स्थिति में नयी संस्थाओं का जन्म हुआ और पंचायतों के स्थान पर कचहरियां स्थापित की गयीं। अलगाव तो पुरानी व्यवस्था में भी था, किन्तु नयी व्यवस्था में जो अलगाव आया; वह भिन्न प्रकार का था। पहले एक गांव दूसरे गांव से और गांव शहर से अलग थे। साहित्य-संस्कृति पर नागरिक संस्कृति की गहरी छाप थी। सबको एकसूत्रता प्रदान करने वाला तत्व धर्म था। यही कारण था कि भक्तिकालीन काव्य नगर और गांव को समान रूप से प्रभावित कर सका। रीतिकालीन काव्य में गांव को वैसा महत्व प्राप्त नहीं हुआ। इसे प्रमाणित करने के लिए बिहारी के दोहे उद्धृत किये जा सकते हैं। आधुनिक काल में गांव की ओर साहित्यकारों की दृष्टि अवश्य गयी, पर अब तक किन्हीं अंशों में गांव बदल चुके थे।



अपनी प्रगति जाँचे

प्रश्न 1: आधुनिक काल की परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।



4.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की अवधारणा, उपविभाग, आधुनिक युग की परिस्थितियों, काव्यागत विशेषताओं और प्रधान कवियों के व्यक्तित्वों से परिचित होंगे। आधुनिक काल साहित्य, सामाजिक उत्थान और राष्ट्रीय हित की बात करता है।



4.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : रीतिकाल के पश्चात हिंदी-साहित्य में दो परिवर्तन आए। विषय के दृष्टिकोण से श्रृंगारपरकता का स्थान सामाजिक सरोकार ने ले लिया वही भाषा की दृष्टि से ब्रजभाषा व अवधी भाषा का स्थान खड़ी बोली हिंदी ने ले लिया। नारी स्वतंत्रता, अछूतोद्धार, शिक्षा का महत्व, श्रम का महत्व, मानव की समानता आदि मूल्यों का साहित्य में पदार्पण इसी युग में हुआ। साहित्य की अनेक परंपरागत रूढ़ियों का ह्रास हुआ। कुछ ऐसे ही कारणों से इस युग को आधुनिक काल या पुनर्जागरण काल कहा गया। अधिक जानकारी के लिए कृपया इकाई को पढ़ें।



4.8 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
3. लक्ष्मी लाल बैरागी, हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का इतिहास, संघी प्रकाशन, जयपुर।
4. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्रभाषा

परिषद्, पटना।

6. राम खेलावन पाण्डेय, हिंदी साहित्य का नया इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
8. डॉ. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. डॉ. धीरेन्द्र वामा, हिंदी साहित्य (भाग 1 और 2), भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहाबाद।



4.9 अभ्यास प्रश्न

1. (क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए –

4. 'भारतेन्दु युग' का समय सीमा क्या है?
5. 'छायावादीकाल' का समय सीमा बताएं?
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक काल को कितने खंडों में विभाजित किया?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए –

1. आधुनिक काल के कवियों और उनकी रचनाओं का सामान्य परिचय दीजिए।
2. आधुनिक काल काव्यों की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

*** ***** ***

इकाई 5: भारतेन्दु युग (पुनर्जागरण काल)

इकाई की रुपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 भारतेंदु युग

- 5.3.1 श्रृंगारिकता
- 5.3.2 भक्तिभावना
- 5.3.3 प्रकृतिचित्रण
- 5.3.4 समस्यापूर्ति
- 5.3.5 राजभक्ति एवं देशभक्ति
- 5.3.6 राष्ट्रीय चेतना
- 5.3.7 सामाजिक समस्याओं का चित्रण
- 5.3.8 जनजागरण एवं विद्रोह का आह्वान

5.4 प्रमुख कवि

5.5 सारांश

5.6 प्रगति विवरण(केवल रूपरेखा)

5.7 अधिक जानने के लिए पढ़े

5.8 अभ्यास प्रश्न

5.1 उद्देश्य

यह इकाई हिन्दी साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल के भारतेन्दु युग से संबन्धित है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल के भारतेन्दु युग विषय में जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।
- भारतेन्दु युग की सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- देश की आजादी की लड़ाई में साहित्यकारों के योगदान के विषय में तथा उन महान साहित्यों के विषय में जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।
- हिन्दी साहित्य के विकास में भारतेन्दु युग और उस युग के कवियों की भाव-भंगिमाओं से भी ज्ञात हो पाएंगे।

5.2 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास के अंतर्गत भारतेन्दु युगीन कविता एक संक्रमण के दौर से गुजर रही थी। उस समय परम्परागत रीतिकालीन कविता की नायिका-भेद वाली प्रवृत्तियाँ, श्रृंगारिकता, भक्ति भावना और प्रकृति चित्रण से सम्बंधित रचनाएँ लिखी जा रही थीं साथ ही नवीन युग-चेतना से संचालित नये विचारों और मूल्यों को अभिव्यक्त करती हुई जन-जागरण वाली रचनाएँ भी सामने आ रही थीं। जिस प्रकार सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में सामन्ती और पूँजीवादी मूल्यों का टकराव हो रहा था, उसी प्रकार काव्य के क्षेत्र में रीतिवाद और नवजागरण की धाराएँ आपस में टकरा रहीं थीं, कहीं-कहीं तो दोनों साथ-साथ चल रही थीं। भारतेन्दु युग के एक ओर मध्यकालीन दरबारी संस्कृति थी तो दूसरी ओर आम जनता में एक सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलन के लिए वातावरण तैयार करना था। साहित्य में देश के बढ़ते असन्तोष को व्यक्त नहीं करना था, सदियों से चले आते, समाज की हड्डियों में बसे हुए सामन्ती कुसंस्कारों से भी मोर्चा लेना था (डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास-परम्परा, प्र.सं. 1975, पृ0 14) भारतेन्दु युग की कविता पर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की यह टिप्पणी ध्यान देने योग्य है। भारतेन्दु युग का पूर्ववर्ती काव्य-साहित्य सन्तों की कुटिया से निकालकर राजाओं और रईसों के दरबार में पहुँच गया था, उसमें मनुष्य को प्रत्याहरित सुख-सुविधाओं के जंजाल से मुक्त करके शाश्वत देवत्व के पवित्र लोक में जाने की महत्वाकांक्षा लुप्त हो चुकी थीं। वह मनुष्य को देवता बनाने के पवित्र आसन से च्युत होकर मनोविनोद का साधन हो गया था और दूसरी ओर कवियों की दुनिया राजदरबारों की ओर खिंच गयी। भारतेन्दु ने कविता को इन दोनों ही प्रकार की अधोगतियों के पंथ से उबारा। उन्होंने एक तरफ तो काव्य को फिर से भक्ति की पवित्र मन्दाकिनी में स्नान कराया और दूसरी तरफ उसे दरबारीपन से निकाल कर लोक-जीवन के आमने-सामने खड़ा कर दिया।

5.3 भारतेंदु युग

भारतेन्दु युग में पुराने ढंग की कविताएँ भी लिखी जा रही थीं और नये ढंग की भी। पुरानी परिपाटी से जुड़े कवियों में गिरिधर दास, द्विजदेव, सरदार, हनुमान, द्विजकवि, मन्नालाल, नकछेदी तिवारी, भुवनेश, ललित किशोरी, दत्त कवि, कविराज मुरारिदास रघुराज सिंह, रामसनेही इत्यादि उल्लेखनीय हैं। नयी धारा के कवियों में भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, राधाकृष्ण दास, श्रीनिवास दास, राधाचरण गोस्वामी, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, सुधाकर द्विवेदी, बालमुकुन्द गुप्त तथा ठाकुर जगमोहन सिंह विशेष उल्लेखनीय हैं।

5.3 भारतेन्दु युगीन काव्यों में निहित विभिन्न प्रवृत्तियाँ

भारतेन्दु युगीन कविता की प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं-

5.3.1 श्रृंगारिकता

भारतेन्दु युग में पुरानी और नयी दोनों ही काव्य-धाराओं से जुड़े हुए कवियों ने श्रृंगार की कविताएँ लिखी हैं। इसके पीछे एक कारण तो यह है कि भारतेन्दु युग के पहले की काव्य-धारा घोर श्रृंगारिक थी और अभी भी जीवित थी। दूसरा कारण यह है कि श्रृंगारिकता एक ऐसी प्रवृत्ति है जो मानव-मन के सहज स्वभाव से अद्भुत होती है।



महत्वपूर्ण बिंदु –

श्रृंगार रस के कवि विद्यापति हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ शुक्ल जी ने सम्वत् 1050 से माना है।

यह प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य के आरम्भिक दिनों से लेकर आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल सबसे होती हुई आज भी चली आ रही है। इस प्रवृत्ति के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

यह संग में लागिये डोलैं सदा बिन देखे न धीरज आनती हैं।
छिनहूँ जो वियोग परै हरिचंद तो चाल प्रलै कि सुठानती हैं।
बरुनी में थिरैं
न झपैं उझपैं पल में न समाइबो जानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियाँ दुखिया नहिं मानती हैं।

-भारतेन्दु

इस युग के गिल्लाभाई, बेनी, द्विज, हनुमान, गोप, सेवक आदि ने भी श्रृंगारिक मनोदशाओं के सुन्दर छन्द लिखे हैं। सेवक की ये पंक्तियाँ जिनमें अज्ञात यौवन का चमत्कारपूर्ण चित्रण है, द्रष्टव्य है-

देखिये आनि कछू दिन ते उर से उठे व्याधि के अंकुरवारे।
कीजिये बेगि उपाय न तो दुख पाय हैं आगे भये परभारे।
हो प्रिय सेवक प्रान तुम्हें सुख दे हैं अनोखे विरंचि सँवारे।
वीर अधीर क्यों होत खरी अरी पीर सहेंगे विलोकनि हारे॥

-सेवक

5.3.2 भक्तिभावना

भारतेन्दु युग में यद्यपि भक्ति-भावना गौण हो गयी थी, तथापि संख्या की दृष्टि से भक्ति की काफी रचनाएँ हुई हैं। इनमें निर्गुण भक्ति और वैष्णव भक्ति के अतिरिक्त कहीं-कहीं ईश्वरभक्ति और देशभक्ति को एक-दूसरे से जोड़ने का प्रयास भी हुआ है। इस युग में रामभक्ति की तुलना में कृष्ण-भक्ति काव्य अधिक है। संसार की नश्वरता पर भारतेन्दु लिखते हैं-

साँझ सबेरे पंछी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है।
हम सब इक दिन उड़ जाएँगे यह दिन चार बसेरा है ॥

– –

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

साधो मनुवाँ अजब दिवाना।
माया मोह जनम के ठगिया तिनके रूप भुलाना॥

-प्रतापनारायण मिश्र

प्रभु हो पुनि भूतल पर अवतरिए।
अपने या प्यारे भारत के पुनि दुखदारिद हरिए ॥

-राधाकृष्ण दास

5.3.3 प्रकृतिचित्रण

प्रकृति-चित्रण से सम्बन्धित कविताएँ भारतेन्दु युग में पर्याप्त मात्रा में लिखी गयी हैं। इस समय के कवियों ने होली, बसन्त, पावस, षड्ऋतु आदि से सबंधित अनेक कविताएँ लिखी हैं। भारतेन्दु ने सत्य हरिश्चन्द्र में गंगा-वर्णन और चन्द्रावली नाटिका में यमुना-वर्णन किया है।



महत्वपूर्ण बिंदु –

'सत्य हरिश्चंद्र' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित चार अंकों का नाटक है। काशी पत्रिका नामक पाक्षिक हिन्दी पत्र में प्रकाशित यह नाटक पहली बार 1876 ई. में बनारस न्यु मेडिकल हॉल प्रेस में पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया।

प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, ठाकुर जगमोहन सिंह इत्यादि ने भी इस तरह की अच्छी कविताएँ लिखी हैं। श्रीधर पाठक की प्रकृति-चित्रण से सबंधित कविताएँ काफी प्रसिद्ध हैं। कुछ उदाहरण देखें-

विमल अंबसुर मुकुरन महं मुख बिम्ब निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आप ही तन मन वारति।
यहीं स्वर्ग सुखलोक यहीं सुरकानन सुन्दर।
यहिं अमरन को लोक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर।

- कश्मीर सुषमा, श्रीधर पाठक

बरसा सिर पर आ गई, हरी हुई सब भूमि।
बागों में झूले पड़े, रहे भ्रमरगण झूमि ॥

- भारतेन्दु

5.3.4 समस्यापूर्ति

भारतेन्दु युग में रीतिकालीन काव्य-शैलियों में समस्या-पूर्ति का भी प्रचलन था। उस समय ऐसे अनेक साहित्यिक मंच थे जो कवियों की काव्य-शक्ति की परीक्षा लेने के लिए कठिन से कठिन विषयों पर समस्या-पूर्ति कराते थे। ऐसी प्रतियोगिताओं में कविगण बड़े उत्साह से भाग लेते थे। प्रेमघन द्वारा चर्चा चलिबे को चलाइये ना की पूर्ति बहुत चर्चित है-

बगियान बसन्त बसेरो कियो बसिये तेहि त्यागी तपाइये ना।
दिन काम कुतूहल के जो बने तेहि बीच वियोग बुलाइये ना।
घन प्रेम बढ़ाय के प्रेम अहो विथा बारि वृथा बरसाइये ना।
चित चैत की चाँदनी चाह भरी चरचा चलिबे को चलाइये ना।

-प्रेमघन

5.3.5 राजभक्ति एवं देशभक्ति

भारतेन्दु के समय में दरबारी संस्कृति भी चली आ रही थी। स्वयं भारतेन्दु का पालन-पोषण भी राजभक्ति के माहौल में ही हुआ। रीतिकाल, दरबारी संस्कृति एवं राजभक्ति ये सभी धाराएँ उस समय की कविताओं में लक्षित की जा सकती हैं। भारतेन्दु *के दरबार में समस्या-पूर्ति के लिए विषय दिये जाते थे-*

पूरी अमी की कटोरिया सी चिर जीवौ सदा विक्टोरिया रानी

-भारतेन्दु

ऐसी पंक्तियों की रचना तत्कालीन परिवेश के कारण हुई है। इसी प्रकार अन्य कवियों ने भी ऐसी कविताएँ लिखी हैं-

किय सनाथ थोली भारत की प्रजा अनाथन

-विक्टोरिया के लिए, प्रेमघन

जयति राज राजेश्वरी जय-जय-जय परमेश

-अम्बिकादत्त व्यास

किन्तु इस तरह की राजभक्ति एक तरह का छद्म भी थी। यह राजनीतिक चेतना से संचालित थी और इस राजभक्ति के पीछे देशभक्ति भी काम कर रही थी। अनेक रचनाओं को देखकर तो ऐसा लगता है कि जनता में नवचेतना फैलाने के लिए ही राजभक्ति की आड़ ली गयी थी। प्रिन्स ऑफ वेल्स के स्वागत में भारतेन्दु पुलिस और अदालत की भी चर्चा करते हैं-

पहरू नहि कोउ लखि परै, होय अदालत बन्द ।
ऐसी निरुपद्रव करो, राजकुँअर सुखदकन्द ॥
अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अतिख्वारी ॥

इसी प्रकार एक पहेली में उन्होंने लिखा था-

भीतर-भीतर सब रस चूसै, बाहर से तन-मन-धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि साजन ? नहिं अंग्रेज॥

-भारतेन्दु

इस राजभक्ति और देशभक्ति के अन्तर्विरोध के कारणों की खोज करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने इसका एक कारण सन् 1857 के विद्रोह के बाद प्रकाशित होने वाले महारानी के घोषणा-पत्र को बतलाया है, जिसने भारतीय जनता के मन में ढेर सारी झूठी आशाएँ जगा दी थीं। डॉ. शर्मा ने लिखा है- भारतेन्दु युग का बहुत सा साहित्य राजभक्ति के भावों से पूर्ण है, उसका यही रहस्य है। विद्रोह से पहले के कम्पनी राज्य की तुलना में लोगों ने महारानी विक्टोरिया के शासन को एक भिन्न वस्तु माना और वे समझे कि उन्हें सभी प्रकार की स्वतन्त्रता इस शासन में सुलभ है। बहुत से लोग इस आनन्द में मगन होकर प्राचीन आर्य वीरता के गीत गुनगुनाने लगे, परन्तु यह तन्द्रा बहुत काल तक न रही। शीघ्र ही अकाल, महामारी, टैक्स, बेकारी आदि साम्राज्यवाद की विभूतियों ने उन्हें जगा दिया।

5.3.6 राष्ट्रीय चेतना

इस समय की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना कूट-कूट कर भरी हुई है। भारतेन्दु युग से पहले भूषण इत्यादि की कविताओं में जो राष्ट्रीयता का स्वर है वह क्षेत्रीयता से ऊपर नहीं उठ सका है। किन्तु भारतेन्दु युगीन कवियों ने इतिहास की जानकारी होने के कारण राष्ट्रीयता के भाव को पूरी भारतीयता से जोड़कर देखा। इन कवियों की राष्ट्रीय भावना कहीं अतीत के गौरवबान के रूप में व्यक्त हुई है- हमारो उत्तम भारत देश (राधाचरण गोस्वामी) तो कहीं देश-प्रेम, स्वदेशी और कहीं हिन्दी-प्रेम के रूप में। अतीत के गौरव और वर्तमान

की त्रासदी से भरी हुई ये पंक्तियाँ देखें-

हाय! वह भारत भुव भारी। सबहीं बिधि सो भई दुखारी ॥
हाय! पंचनद, हा पानीपत। अजहुँ रहे तुम धरनि बिराजत ॥
हाय चित्तौर । निलज तू भारी। अजहुँ खरो भारतहि मँझारी ॥

-भारतेन्दु

भारतेन्दु ने अपने देश में बनी हुई वस्तुओं के उपयोग पर बल दिया और लोगों को विदेशी वस्तुओं के त्याग के लिए प्रेरित किया। इस युग के अन्य रचनाकारों ने भी विदेशी वस्तुओं के उपयोग पर खेद व्यक्त किया।

मारकीन मखमल बिना, चलत कछू नहि काम।
परदेशी जुलाहन के, मानहुँ भये गुलाम ॥
इतकी रूई सींग अरु, चरमहिं नित लै जाय।
ताहि स्वच्छ करि वस्तु बहु, भेजत इतहिं बनाय ॥

यहाँ से अंग्रेज कच्चा माल ले जाते थे और उधर से अपने सामान लाकर उन्हें सौगुने दामों पर बेचते थे। इस युग के कवियों की इच्छा थी कि लोग मशीन और वैज्ञानिक आविष्कारों से परिचित हों तथा उपयोग की सारी वस्तुएँ यहीं बनें-

जान सकै सब कुछ सबहि, विविध कला के भेद।
बनै वस्तु कल की इतै, मिटै दीनता खेद ॥

स्वदेशी के साथ ही हिन्दी भाषा के विकास और प्रचार की भी प्रबल आकांक्षा इन कवियों में लक्षित होती है। हिन्दी भाषा के विकास के लिए उस समय अनेक सभाएँ स्थापित की गयी थीं। भारतेन्दु का तो यह मूल मन्त्र ही था-

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ॥
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।

5.3.7 सामाजिक समस्याओं का चित्रण

भारतेन्दु युगीन समाज समस्याओं का पुञ्ज था। उस समाज में अकाल, गरीबी, टैक्स, बेकारी, आलस्य, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, भ्रूण हत्या, मद्यपान, अशिक्षा, अन्धविश्वास, छुआछूत, जाति और धर्मभेद, अभिव्यक्ति पर प्रतिबन्ध, अंग्रेजों और जमींदारों द्वारा लूट जैसी अनेक समस्याएँ बहुत ही भयानक रूप ले चुकी थीं। भारतेन्दु और उनके मण्डल के कवि इन वीभत्स समस्याओं से पीड़ित और चिन्तित थे। उस युग की कविताओं में इन सारी कुप्रवृत्तियों और अत्याचारों का बहुत ही सटीक वर्णन हुआ है। भारत की दुर्दशा देखकर भारतेन्दु ने लिखा था-

रोवहु सब मिलि, आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई ॥

भाग्य और अभाग्य के बीच पिसती हुई जनता के बारे में उन्होंने लिखा–

भारत में मची है होरी।

इक ओर भाग अभाग, एक दिसि होय रही झकझेरी।

–भारतेन्दु

बेकारी की समस्याओं पर भी भारतेन्दु ने बड़ी ही गहराई से चर्चा की है,–

तीन बुलाए तेरह आवैं, निज निज बिपदा रोई सुनावें।

आँखौ फूटै भरा न पेट, क्यों सखि सज्जन, नहि ग्रैजुएट ।

इसी प्रकार अन्य समस्याओं पर भी इन कवियों ने अच्छी कविताएँ लिखी हैं।

व्यंग्यधर्मी होना भारतेन्दु युग की कविताओं की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। अपने समाज में व्याप्त विभिन्न कुप्रवृत्तियों, शोषण, लूट, अन्याय, फैशनपरस्ती, अंग्रेजी शिक्षा, वेश्यागामिता आदि पर इन कवियों ने बड़े ही चुटीले व्यंग्य किये हैं। अंधेर नगरी में चूरन वाले की प्रचार कविता इस दृष्टि से अनूठी है–

चूरन अमले सब जो खावैं, दूनी रिश्वत तुरत पचावैं।

चूरन नाटक वाले खाते, इसकी नकल पचाकर लाते।

चूरन सभी महाजन खाते, जिससे जमा हजम कर जाते।

चूरन खाते लाला लोग, जिनकी अकिल अजीरन रोग।

चूरन खाते एडीटर जात, जिनके पेट पचै नहिं बात।

चूरन साहब लोग जो खाता, सारा हिन्द हजम कर जाता।

चूरन पुलिस वाले खाते, सब कानून हजम कर जाते।

–भारतेन्दु

5.3.8 जनजागरण एवं विद्रोह का आह्वान

भारतेन्दु और उनके सहयोगी साहित्यकारों ने समाज के अन्तर्विरोधों को समझते हुए समाज की प्रतिगामी ताकतों और प्रतिक्रियावादी–पुरातन पंथी मूल्यों का पर्दाफाश किया और जनता को उनके प्रति सचेत किया। इन कवियों की चेतना जहाँ साम्राज्यवाद–विरोधी थी वहीं सामन्तवाद विरोधी भी थी। ये कवि समाज के कमजोर ढाँचे को बदलना चाहते थे, जिसके कारण लोग गुलाम बने हुए थे। भारतेन्दु ने एक व्याख्यान में यह स्पष्ट घोषणा की थी– हम इससे बढ़कर क्या कहें कि जैसे तुम्हारे घर में कोई पुरुष व्यभिचार करने आए तो जिस क्रोध में उसको पकड़कर मारोगे और जहाँ तक तुम्हारे में शक्ति होगी उसका सत्यानाश करोगे, उसी तरह इस समय जो–जो बातें तुम्हारी उन्नति–पथ का काँटा हों उनकी जड़ खोदकर फेंक दो। जब तक सौ दो सौ मनुष्य बदनाम न होंगे, जाति से बाहर न निकाल दिये जायेंगे, कैद न होंगे, वरंच जान से ना मारे जाएँगे तब तक कोई देश भी न सुधरेगा। इस तरह के जोशीले वक्तव्यों और क्रान्तिकारी कविताओं से इस समय के कवियों

ने समाज को जगाया–

पढ़ि कमाय कीन्हो कहा, हरे न देस कलेस।
जैसे कन्ता घर रहे, तैसे रहे विदेस ॥

–प्रतापनारायण मिश्र

यहाँ के लोगों की कायरता पर उन्हें धिक्कारते हुए भारतेन्दु ने संघर्ष के लिए प्रेरित किया–

धिक् वह मात–पिता जिन तुम सो कायर पुत्र जन्यो री।
धिक् वह घरी जनम भयो जामैं यह कलंक प्रकट्योरी।
जनमत ही क्यों न मरो री।
उठो–उठो सब कमरन बाँधो शस्त्रन शान धरो री।
विजय निसान बजाइ बावरे आगेइ पाँव दरो री।

स्वतन्त्रता के लिए प्रेरित करते हुए प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा–

सब तजि गहौ स्वतन्त्रता, नहिं चुप लातै खाव।
राजा करै सो न्याव है, पासा परै सो दाँव ॥

5.4 प्रमुख कवि

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र –(1850–1855)

भारतेन्दु का जन्म काशी के एक सम्पन्न वैश्य कुल में हुआ था। वे मात्र चौंतीस वर्ष और चार महीने जीवित रहे। इनके माता पिता बाबू गोपालचन्द्र गिरिधर दास भी बहुत अच्छे कवि थे। भारतेन्दु युग–प्रवर्तक रचनाकार थे। वे आधुनिक हिन्दी साहित्य के अग्रदूत थे। इनके शौकीन स्वभाव, खुशमिजाजी और दानशीलता की अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। भारतेन्दु यात्रा के भी बहुत शौकीन थे। सिर्फ पन्द्रह साल की अवस्था में ये जगन्नाथ धाम गये थे। इस यात्रा में इनका परिचय बंगाल के नये साहित्य से हुआ। वहाँ की जागृति और नये ढंग की सामाजिक हलचल से ये बहुत प्रभावित हुए और घर लौटकर इन्होंने सिर्फ सत्रह साल की अवस्था में ही कवि वचन सुधा (1868 ई0) नाम की पत्रिका निकाली। सन् 1873 ई0 में इन्होंने हरिश्चन्द्र मैगजीन नाम की दूसरी पत्रिका निकाली। आठ अंकों के बाद इसका नाम बदलकर हरिश्चन्द्र चन्द्रिका कर दिया गया। परिमार्जित हिन्दी का प्रथम दर्शन इसी पत्रिका में होता है। भारतेन्दु ने स्वयं कहा था कि सन् 1873 ई0 से हिन्दी नये चाल में ढली।



महत्वपूर्ण बिंदु –

जयति राज राजेश्वरी जय-जय-जय परमेश कविवचनसुधा भारतेन्दु हरिशचंद्र द्वारा सम्पादित एक हिन्दी समाचारपत्र था। इसका प्रकाशन 15 अगस्त 1867 को वाराणसी आरम्भ हुआ जो एक क्रांतिकारी घटना थी। यह कविता-केन्द्रित पत्र था। इस पत्र ने हिन्दी साहित्य और हिन्दी पत्रकारिता को नये आयाम प्रदान किए।

भारतेन्दु विभिन्न सामाजिक-साहित्यिक आन्दोलनों के केन्द्रबिन्दु थे। उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में न केवल स्वयं रचना की अपितु अपने युग के रचनाकारों को लगातार प्रेरित भी किया। अनेक विवादों को सुलझाते हुए, अनेक समस्याओं- रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, गरीबी, परतन्त्रता इत्यादि के प्रति सचेत और जाग्रत करते हुए उन्होंने साहित्यकार के कर्मक्षेत्र को व्यापक आधार-भूमि प्रदान की। अनेक आन्दोलनों के संचालक होते हुए भी वे कभी नेता की रूप में लोगों के सामने नहीं आये। उन्होंने हमेशा लोगों को मित्रवत् उत्साहित किया। उनके व्याख्यानों, निबन्धों और नाटकों में तत्कालीन समाज का बहुत ही सजीव रूप उपस्थित है। उनकी दृष्टि समाज की प्रत्येक गतिविधि पर थी। कविवचनसुधा और हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में प्रकाशित विभिन्न विषयों से सबंधित विज्ञप्तियों को देखकर उनकी जागरूकता और जीवन्तता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। 23 मार्च 1874 को स्वदेशी के पक्ष में एक प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित हुआ था- हम लोग सर्वान्तर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा नहीं पहिनेंगे....।

भारतेन्दु की कविता में जो अन्तर्विरोध हैं वे उस युग के उनके संस्कारों के अन्तर्विरोध हैं। उनके एक तरफ मध्ययुगीन दरबारी संस्कृति थी और दूसरी तरफ नवीन चेतना। इन दोनों प्रवृत्तियों के बीच काफी कशमकश होती रही। इसी कारण उनकी कविताओं में पारम्परिक भक्ति, श्रृंगार, समस्या-पूर्ति और राजभक्ति भी है, साथ ही नवीन चेतना से संचालित युगीन विसंगतियों को उद्घाटित करती हुई मुक्तिकामी विचारधारा से लबालब भरी हुई कविताएँ भी हैं। उन्होंने अपने विषय में लिखा था-

कहेंगे सबैही नैन नीर भरि भरि पाछे,
प्यारे हरिश्चन्द की कहानी रह जाएगी।

इनकी मृत्यु के बाद प्रेमघन ने लिखा था-

मित्र क्यों न रोवै तेरो शत्रु क्यों न हौवै तऊ,
पूरो पशु होवे ना तो क्या मजाल रोवेना ?

इसको पढ़कर ज्ञात होता है कि भारतेन्दु को अपने समाज से और समाज को भारतेन्दु से कितना गहरा लगाव था।

रचनाएँ

काव्य – भारतेन्दु की काव्य-कृतियों की संख्या 70 के लगभग हैं। इनमें से प्रेम सरोवर, प्रेम मालिका, वर्षा विनोद, गीत गोविन्दानन्द, विनय-प्रेम पचासा, वेणुगीति, आदि विशेष चर्चित हैं। भारतेन्दु ग्रन्थावली के प्रथम भाग में उनकी सभी कविताएँ एक जगह उपलब्ध हैं।

नाटक- मौलिक – वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चन्द्रावली, नाटिका, विषस्य विषमौषधम्, भारत-दुर्दशा, नील देवी, अन्धेर नगरी, प्रेमयोगिनी, सती प्रताप (अधूरा)।

अनुवाद – पाखण्ड, विडम्बन, धनंजय विजय, विद्या सुन्दर, कर्पूरमंजरी, मुद्रा राक्षस, सत्य हरिश्चन्द्र, भारत जननी। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनेक परिहास, प्रहसन, अनुवाद, धर्म-इतिहास सम्बन्धी लेख तथा अनेक व्याख्यानात्मक लेख लिखे हैं।



अपनी प्रगति जाँचें

प्रश्न 1: भारत्तेंदु युग में सामाजिक समस्याओं का चित्रण कीजिए।

प्रश्न 2: भारत्तेंदु के बारे में चर्चा करें।

प्रतापनारायण मिश्र (1856-1874 ई.)

इनका जन्म बैजेगाँव कजला उन्नाव में हुआ था। इन्हें अंग्रेजी, उर्दू, फारसी एवं संस्कृत का अच्छा ज्ञान था। ये कानपुर से 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र निकालते थे। हास्य और व्यंग्य से झनझना देने वाली इनकी रचनाएँ बहुत प्रभावशाली होती थीं। उन्होंने गद्य एवं पद्य दोनों में रचनाएँ की हैं। इनकी रचनाओं में समाज-सुधार, हिन्दी प्रचार, जन-जागरण एवं देश-दशा का सुन्दर वर्णन हुआ है। मिश्रजी ने हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान का स्वर बुलन्द किया था। इन्होंने बात, मनोयोग, वृद्ध, भौं, खुशामद, नारी, आदि विषयों पर निबन्ध लिखे हैं। कवि कौतुक, हठी हम्मीर, कवि प्रसाद आदि उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। इनकी कविताओं में प्रेम-पुष्पावली, मन की लहर, लोकोक्ति शतक, 'तृप्यंताम', श्रृंगार विलास इत्यादि अधिक महत्वपूर्ण हैं।

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन (1855-1922)

इनका जन्म मिर्जापुर में हुआ था। प्रेमघन भारतेन्दु-मण्डल के महत्वपूर्ण कवियों में थे। इन्होंने भी गद्य और पद्य दोनों में रचनाएँ की हैं। इनकी कविताएँ पारम्परिक और नये दोनों विषयों पर हैं। इन्होंने नागरी नीरद साप्ताहिक तथा आनन्द कादम्बिनी मासिक के सम्पादन द्वारा तत्कालीन पत्रकारिता को भी नयी दिशा दी थी। इनकी कविताओं में राजभक्ति और राष्ट्रीय चेतना दोनों के दर्शन होते हैं। देश की तत्कालीन स्थितियों पर इन्होंने बड़ी

गम्भीर रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। जीर्ण जनपद, आनन्द अरुणोदय, हार्दिक हर्षादर्श, मयंक महिमा, अलौकिक लीला आदि इनकी महत्वपूर्ण काव्य रचनाएँ हैं। इनकी कविताएँ प्रेमघन सर्वस्व के प्रथम भाग में संकलित हैं।

ठाकुर जगमोहन सिंह (1857-1899 ई.)

इनका जन्म विजय राघवगढ़ में हुआ था। इनके पिता ठाकुर सरयू सिंह वहाँ के राजा थे जिनका राज्य 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में जब्त कर लिया गया था। इन्होंने विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए भी साहित्य-सेवा जारी रखी। ये जब अध्ययन के लिए काशी गये थे तभी इनकी भेंट भारतेन्दु एवं अन्य कवियों से हुई थी। इनकी कविताओं से श्रृंगार एवं प्रकृति-वर्णन अधिक है। इनकी प्रसिद्ध काव्यकृतियाँ हैं- प्रेमसम्पत्तिलता, श्यामालता, श्याम सरोजिनी और देवयानी। एक सवैया देखिये-

अबतो उर आवत है सजनी, मिलि जाऊँ गरे लगि के छतियाँ।
मन की करि भाँति अनेकन औ मिलि कीजिय री रसकी बतियाँ ॥
हम हारि अरी करि कोटि उपाय, लिखी बहु नेह भरी पतियाँ।
जगमोहन मोहनी मूरति के बिना कैसे करें दुख की रतियाँ ॥

अम्बिकादत्त व्यास (1858-1900 ई.)

ये काशी के रहने वाले थे। इन्होंने पीयूष प्रवाह का सम्पादन किया था। संस्कृत और हिन्दी दोनों के अच्छे विद्वान थे एवं दोनों में साहित्य-रचना भी करते थे। समस्या-पूर्ति में ये सिद्धहस्त थे। पावस पचासा में इन्होंने पावस ऋतु का सुन्दर वर्णन किया है। सुकवि सतसई में कृष्ण की बाल लीला से संबंधित इनके सात सौ दोहे संकलित हैं। इन्होंने कंसवध नाम से एक प्रबन्ध काव्य भी शुरू किया था किन्तु वह अधूरा रह गया। इनकी काव्य-भाषा ब्रजभाषा है। इनका एक दोहा प्रस्तुत है -

सुमिरत छवि नंदनंद की, बिसरत सब दुखद्वंद ।
होत अमंद अनंद हिय, मिलत मनहु सुख कंद ॥

बालमुकुन्द गुप्त (1865-1907 ई.)

इनका जन्म हरियाणा के रोहतक जिले के गुड़ियाना गाँव में हुआ था। ये अच्छे कवि, अनुवादक एवं कुशल सम्पादक थे। इन्होंने भारत मित्र का सम्पादन किया था। गद्य की अपेक्षा इन्होंने कविताएँ कम लिखी हैं। हिन्दी-प्रेम और राष्ट्रीयता इनकी कविताओं के मुख्य विषय हैं। इनकी रचनाएँ भारतेन्दु और द्विवेदी-युग को जोड़ने वाली हैं। ये बड़े जिन्दा दिल और विनोदी स्वभाव के थे। व्यंग्य और हास्य इनकी कविता की सहज प्रवृत्ति है।

बालकृष्ण भट्ट (1844-1914 ई.)

बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी प्रदीप का सम्पादन किया था। इनका अध्ययन बहुत विशद्

था। ये मूलत: गद्य-लेखक थे। इनके निबन्धों में इनकी प्रखरता और स्पष्टवादिता देखने लायक है। इनकी रचनाओं का तेवर इन्हें अपने युग के अन्य रचनाकारों से अलग कर देता है। ये तीखी और झनझना देने वाली भाषा में खरी-खरी सुना देने के लिए प्रसिद्ध हैं। ये भारतेन्दु युग के सबसे समर्थ निबन्धकार हैं।

भारतेन्दुयुगीन अन्य महत्वपूर्ण रचनाकारों में राधाचरण गोस्वामी (1808-1925), सुधाकर द्विवेदी (1850-1911), लाला श्रीनिवास दास (1851-87), राधाकृष्ण दास (1865-1907) विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त रामकृष्ण वर्मा बलवीर, सेवक, लछिराम, सरदार, बेनीद्विज, हनुमान एवं तोताराम, केशवराम भट्ट, मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या, कार्तिकप्रसाद खत्री आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।



5.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के भारतेन्दु युग की परिस्थितियों, काव्यागत विशेषताओं और प्रधान कवियों के व्यक्तित्यों से परिचित होंगे। भारतेन्दु युगीन साहित्य सामाजिक उत्थान और राष्ट्रहित की बात करता है। देश की आजादी और उसकी अस्मिता की रक्षा के लिए आवाज उठाना उनका प्रमुख स्वर रहा है।



5.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : भारतेन्दु ने सामाजिक दोषों, रूढ़ियों, कुरीतियों का घोर विरोध किया है। उन्होंने धर्म के नाम पर होने वाले ढोंग की पोल खोल दी है। छुआछूत के प्रचार के प्रति क्षोभ के स्वर कवि में हैं। प्रतापनारायण मिश्र स्त्रियों की शिक्षा के पक्षपाती हैं, बाल-विवाह के विरोधी तथा विधवाओं के दुख से दुखी है।

प्रश्न 2 का उत्तर : कवि, गद्यकार और संपादक प्रतापनारायण मिश्र का जन्म 24 सितम्बर 1856 को उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के बैजनाथ बैथर में हुआ। वह हिंदी खड़ी बोली और भारतेंदु युग के उन्नायकों में से एक थे। आरंभिक शिक्षा-दीक्षा के बाद विद्यालयी शिक्षा से उनका मन विरत हो गया और स्वाध्याय के बल पर ही अपनी प्रतिभा का विस्तार किया।



5.6 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
3. लक्ष्मी लाल बैरागी, हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का इतिहास, संघी प्रकाशन, जयपुर।
4. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।



5.7 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

4. 'प्रतापनारायण मिश्र' का काल कब से कब तक था ?
5. 'पीयूष प्रवाह' के रचनाकार कौन थे ?
6. 'भारत मित्र' किसकी रचना है ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. भारतेन्दु युग के इतिहास का लेखा जोखा प्रस्तुत कीजिए।
2. भारतेन्दु मण्डल के कवियों और उनकी रचनाओं का सामान्य परिचय दीजिए।
3. भारतेन्दु युगीन काव्यों की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

*** ***** ***

इकाई 6 द्विवेदी युग (जागरण सुधार काल)

इकाई की रुपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 द्विवेदीयुग और इसकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ

6.3.1 नैतिकता और आदर्श का आग्रह

6.3.2 प्रकृति और प्रेम

6.3.3 राष्ट्र की वर्तमान स्थिति का वर्णन

6.3.4 प्राचीन अतीत का गौरवगान

6.3.5 राष्ट्रीय चेतना

6.4 प्रमुख कवि

6.5 अन्य कवि

6.6 सारांश

6.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

6.8 अधिक जानने के लिए पढ़े

6.9 अभ्यास प्रश्न

6.1 उद्देश्य

यह इकाई हिन्दी साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल के द्विवेदी युग से संबंधित है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के द्विवेदी युगीन काल के विषय में जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।
- द्विवेदी युग की कविताओं में निहित सामाजिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- हिन्दी साहित्य के विकास में द्विवेदी युग और उस युग के कवियों की भाव-भंगिमाओं से भी ज्ञात हो पाएंगे।

6.2 प्रस्तावना

हिन्दी का द्विवेदी युगीन साहित्य भारतेन्दु युगीन साहित्य का विकसित और अगला चरण है। यहाँ पुरानी कविता की कुछ परम्परागत और अप्रासंगिक हो चुकी प्रवृतियों

कमजोर होती हुई तथा नवीन सामाजिक दबाव के परिणामस्वरूप कुछ नयी प्रवृतियों जुड़ती हुई लक्षित होती हैं। इस युग के साहित्य पर जिन सामाजिक-सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय-अन्तराष्ट्रीय घटनाओं का विशेष प्रभाव पड़ा उनमें बहुतों की शुरुआत तो भारतेन्दु युग में ही हो गयी थी। आर्यसमाज, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, थियोसॉफिकल सोसाइटी आदि के विचारों के साथ ही लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, लाला लाजपतराय, योगी अरविन्द, रमण महर्षि आदि के सांस्कृतिक राजनीतिक विचारों का भी इस समय तेजी से प्रचार-प्रसार हुआ। तिलक के उग्र राष्ट्रीयतावाद का लोगों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। गाँधीजी इस समय राजनीतिक रूप में उभर रहे थे। उनके समाज-सुधार सबंधी क्रिया-कलापों का भी जनता पर तेजी से असर हो रहा था। 1885 ई. में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। इसके आगे 1905 में बंग-भंग के कारण लोगों में स्वदेशी आन्दोलन और राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ। 1904 में रूस-जापान युद्ध में जापान की विजय का पूरे एशियायी समूह और भारत पर भी सकारात्मक और आशावादी असर हुआ। 1914-18 और 1939-45 के प्रथम और द्वितीय महायुद्धों ने भी हिन्दी साहित्य को व्यापक विषय से जुड़ने को विवश किया। इस समय अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीतियों से असन्तुष्ट होने के कारण गाँधीजी ने 1921 में सत्याग्रह का सूत्रपात किया। 1931 में भगतसिंह और उनके साथियों को फाँसी दी गयी। साहित्य के निर्माण कार्य में सरस्वती पत्रिका 1899 तथा 1893 में स्थापित काशी नागरी प्रचारिणी सभा और 1910 में स्थापित हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

सरस्वती पत्रिका का आरम्भ सन् 1899 में हुआ। सन् 1903 में इस पत्रिका के सम्पादन का भार आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ग्रहण किया। इस पत्रिका के माध्यम से द्विवेदीजी ने साहित्य के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उनकी प्रेरणा से गद्य और पद्य दोनों की भाषा खड़ी बोली और भाषा का परिष्कृत एवं परिमार्जित दौर सामने आया। हिन्दी का शब्द-भण्डार समृद्ध हुआ, व्याकरण के नियम स्थिर हुए विराम चिह्नों का सही प्रयोग होने होने लगा, अलंकार इत्यादि का प्रयोग बखूबी से होने लगा। द्विवेदी युग में काव्य के क्षेत्र में भी ब्रजभाषा का आधिपत्य समाप्त हुआ। हालांकि कुछ कवि अब भी ब्रजभाषा में कविताएँ लिख रहे थे। द्विवेदी जी ने नायिका-भेद के स्थान पर नये- नये विषयों पर कविता लिखने के लिए लोगों को प्रेरित किया।

इस प्रकार भारतेन्दु युग के साहित्य में यदि हम हिन्दी नवजागरण की पहली मंजिल को देखते हैं, तो द्विवेदी युग में हम उसकी दूसरी मंजिल को पहचान सकते हैं। जन-जीवन के यथार्थ के प्रति, राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रति जो जागरूकता हमें भारतेन्दु युग के रचनाकारों में दिखायी पड़ती है, द्विवेदी युग में वह और भी विकसित होती है, तथा उसमें गुणात्मक वृद्धि होती है। इस युग में ऐसे कवियों की एक पूरी पंक्ति हमारे सामने आती है, जो राष्ट्रीय आन्दोलन तथा जनता के जीवन से सीधे प्रेरणा लेते हुए अपनी रचना में मुक्तिकामी राष्ट्र तथा जाति की आकांक्षाओं एवं संघर्षों को चित्रित करते हैं। साहित्य को जो यथार्थवादी जमीन भारतेन्दु युग में प्राप्त हुई वह द्विवेदी युग में और उर्वर होती है और

कवियों की एक पीढ़ी सामने आती है जो परम्परागत कविता के साथ-साथ यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रेरित रचनाशीलता के नाते भी अपनी पहचान मजबूत करती है। राष्ट्रीय आन्दोलन को जन-आकांक्षाओं से जोड़ते हुए जनता को सही मुक्ति की दिशा में अग्रसर करने की बात उसके नेताओं से अधिक जन जीवन की पहचान रखने वाले रचनाकारों की सर्जना के माध्यम से सामने आती है और ये राष्ट्र के नेताओं का ध्यान न केवल देश और देश की जनता की वास्तविक स्थिति की ओर आकर्षित करते हैं, उन नेताओं की सोच को ऐसे विचारों से मुखातिब करते हैं, जिनके सन्दर्भ में ही देश और देश की जनता की मुक्ति सार्थक बन सकती है। झण्डा ऊँचा रहे हमारा (श्यामलाल गुप्त पार्षद) जैसा गीत जो स्वतन्त्रता आन्दोलन में जन-जन की प्रेरणा बनता है, इसी समय रचा जाता है और लोकगीतों की तर्ज पर शहीदों तथा स्वतन्त्रता सेनानियों की निष्ठा का गान करते हुए सरपे बाँधे कफनवा हो शहीदों की टोली निकली (वंशीधर शुक्ल) जैसे गीत इसी समय जन-जन की जबान पर गूंज उठते है।

6.3 द्विवेदी युग और इसकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ

6.3.1 नैतिकता और आदर्श का आग्रह

द्विवेदी युगीन कविता की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है उसका नैतिकता और आदर्श का आग्रही होना। इस समय के कवियों ने प्राचीन महत्वपूर्ण ग्रन्थों के प्रेरक प्रसंगों को आधार बनाकर और कहीं-कहीं काल्पनिक कथाओं के माध्यम से नैतिकता और आदर्श का उपदेश दिया है। नैतिकता के इस अतिशय आग्रह के कारण प्रेम कविताओं का बलपूर्वक निषेध भी किया गया है। इस युग की कविताओं में सत्य की विजय, आत्मसम्मान, कर्तव्य पालन आदि मूल्यों के महत्व को रेखांकित किया गया है। इस सन्दर्भ में मैथिलीशरण गुप्त के साकेत, जयद्रथ-वध, भारत- भारती, हरिऔध का प्रियप्रवास, रामनरेश त्रिपाठी कृत मिलन इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस तरह के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।
क्यों आज रामचरितमानस सब कहीं सम्मान्य है?
सत्काव्य-युत उसमें परम आदर्श का प्राधान्य है।

-मैथिलीशरण गुप्त



महत्वपूर्ण बिंदु -

'साकेत' मैथिलीशरण गुप्त रचित महाकाव्य का नाम है। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1931 में हुआ था। इसके लिए उन्हें 1932 में मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ था।

6.3.2 प्रकृति और प्रेम

इस युग की कविताओं में प्रकृति का सर्वथा नये रूप में चित्रण हुआ है। इन कविताओं में प्रकृति का कहीं इतिवृत्तात्मक वर्णन हुआ है, तो कहीं प्रकृति का चेतना सम्पन्न मानवोचित रूप में चित्रण हुआ है। कवियों ने मानव-मन के भावों का प्रभाव प्रकृति की गतिविधियों में भी लक्षित किया है। इसीलिए छायावाद में प्रकृति का जो सूक्ष्म और संवेदनशील रूप देखने को मिलता है, उसका पूर्वरूप द्विवेदीयुगीन कविताओं में बहुत स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्रकृति के प्रत्येक रूप के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं-

दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला ॥
तरु-शिखा पर थी अब राजती ।
कमलिनी कुल-वल्लभ की प्रभा ॥

6.3.3 राष्ट्र की वर्तमान स्थिति का वर्णन

द्विवेदी युग में भारतेन्दु युगीन समाज की सारी समस्याएँ कमोबेश मौजूद थीं। देश की जनता एक तरफ साम्राज्यवादी और दूसरी तरफ सामन्ती-पूँजीवादी शोषण का लगातार शिकार हो रही थी। गरीबी, अशिक्षा, जाति-पाँति, छुआछूत, अन्धविश्वास और धनिक वर्गों में फैशन परस्ती इत्यादि समस्याएँ समाज में छायी हुई थीं। इस समय के कवियों ने इन सारी समस्याओं को काव्य का विषय बनाया। पहले जहाँ ईश्वर, राजा, सामन्त और राजकुमारियाँ काव्य के केन्द्र में थीं, उनकी जगह पर सामान्य मानवता की काव्य में प्रतिष्ठा हुई। गुप्तजी की किसान, सियारामशरण गुप्तजी की अनाथ, सनेहीजी की कृषक क्रन्दन में किसानों के जीवन का प्रभावशाली वर्णन हुआ है। नाथूराम शर्मा शंकर के गर्भरंडा-रहस्य में जन्म से पहले ही विधवा हो जाने वाली विधवाओं के दु:खद जीवन का बड़ा ही कारुणिक चित्रण हुआ है। ऊँची जातियों द्वारा नीची जातियों पर किये गये अत्याचार का चित्रण इन पंक्तियों में देखें-

आप आँखें खोलकर के देखिए,
आज कितनी जातियाँ हैं सिर-धरी।
पेट में उनके पड़ी दिख जायेंगी,
जातियाँ कितनी सिसकती या मरी ॥

-हरिऔध

द्विवेदी युग के कवियों ने न केवल अपने समाज में व्याप्त असंगतियों का यथार्थांकन किया अपितु वर्गीय विषमताओं को उद्घाटित करते हुए अपने जनपक्षीय और समतावादी विचारों का भी परिचय दिया है-

कुछ भूखे मर रहे महातन शीर्ण हुआ है,
कुछ इतना खा गये कि घोर अजीर्ण हुआ है।

– गयाप्रसाद शुक्ल सनेही

6.3.4 प्राचीन अतीत का गौरवगान

आलोच्य युग का वर्तमान दु:खद था, इसलिए भारतीय जनमानस चिन्ता और हीन भावना से ग्रस्त था। वर्तमान के निराशाजनक एवं अन्धकारमय होने के कारण भविष्य भी अनिश्चित था। ऐसी परिस्थिति में इस युग के कवियों ने बड़ी श्रद्धा और विश्वास के साथ अपने गौरवशाली अतीत का यशगान करके निराश लोगों के मन में आशा और उत्साह का भाव भरने की कोशिश की है। भारत–भारती की ये पंक्तियाँ भारतवर्ष की श्रेष्ठता की घोषणा करती हैं–

भू–लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है ॥

–मैथिलीशरण गुप्त

भारत–भारती में ही गुप्तजी ने अपने भूत, वर्तमान और भविष्य पर विचार करने के लिए प्रेरित करते हुए लिखा–

हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी ॥

–मैथिलीशरण गुप्त

6.3.5 राष्ट्रीय चेतना

द्विवेदी युग के सभी कवि इस बात को महसूस कर रहे थे कि हमारे देश की सारी समस्याओं की जड़ देश की पराधीनता है। इस पराधीनता के कारण जो तमाम दु:ख–दर्द पैदा हो गए थे, उनमें सबसे अधिक त्रासद था देश के माथे पर लगा हुआ गुलामी का कलंक। इस कलंक और अपमान को मिटा देने के लिए इस युग के रचनाकारों ने जहाँ एक तरफ लोगों की अनावश्यक सहनशीलता को धिक्कारा, वहीं दूसरी ओर देश की आजादी के लिए अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर देने के लिए ओजस्वी स्वरों में उद्घोष किया। कुछ उदाहरण देखें–

अधिकार खोकर बैठ रहना यह महा दुष्कर्म है।
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दंड देना धर्म है।

- मैथिलीशरण गुप्त

इसी प्रकार से माखनलाल चतुर्वेदी कृत 'पुष्प की अभिलाषा' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है,-

मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जायें वीर अनेक।

-माखनलाल चतुर्वेदी

6.4 प्रमुख कवि

पं० श्रीधर पाठक (सन् 1859-1928 ई.)

इन्हें संस्कृत का बहुत अच्छा ज्ञान था। फारसी और अंग्रेजी का भी इन्होंने अध्ययन किया था। ये बहुत ही सहृदय और प्रकृति प्रेमी थे। इन्होंने खड़ी बोली आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था। इनकी रचनाओं में देश-प्रेम, प्रकृति-सौन्दर्य और स्वच्छन्दता का भाव भरा हुआ है। छायावाद का आरम्भिक स्वरूप इनकी कविताओं में देखा जा सकता है। इन्होंने कई महत्वपूर्ण पुस्तकों का अनुवाद भी किया है। इनकी रचनाओं में कश्मीर सुषमा, वनाष्टक ऊजड़ग्राम, देहरादून, एकांतवासी, भारत गीत, श्रान्त पथिक, जगत सचाईसार और मनोविनोद विशेष उल्लेखनीय हैं।

नाथूराम शर्मा शंकर (1859-1932 ई.)

इन्होंने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में कविताएँ की हैं। श्रीधर पाठक की भाँति ही ये भारतेन्दु और द्विवेदी युग को जोड़ने वाले कवि हैं। आर्यसमाजी विचारधारा में विश्वास होने के कारण इनकी रचनाओं में समाज-सुधार का स्वर प्रधान है। पं. प्रतापनारायण मिश्र से इनका अच्छा सबंध था। इनकी कविताएँ अपने समय की सभी महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में छपती रही हैं। अनुराग रत्न, शंकर-सरोज, गर्थरण्डा रहस्य तथा शंकर सर्वस्व इनके प्रमुख काव्य-संग्रह हैं। इनकी कविताएँ प्राय: अतिश्योक्तिपूर्ण होती थी-

तेज न रहेगा तेजधारियों का नाम को भी,
मंगल मयंक मंद मंद पड़ जायेंगे।
मीन बिन मारे मर जायेंगे सरोवरों में,
डूब-डूब शंकर सरोज सड़ जायेंगे ॥
चाँक-चौंक चारों ओर चौकड़ी भरेंगे मृग,
खंजन खिलाड़ियों के पंख झड़ जायेंगे ।।
बोल इन अँखियों की होड़ करने को अब,
विश्व के अड़ीले उपमान उड़ जायेंगे ॥

पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी (1864-1938 ई.)

इनका जन्म रायबरेली जिले के दौलतपुर गाँव में हुआ था। इन्हें हिन्दी और संस्कृत

के अलावा अंग्रेजी, बँगला, मराठी और गुजराती भाषाओं का ज्ञान था। ये युग प्रवर्तक रचनाकार थे। इनके युग का नाम इन्हीं के नाम पर पड़ा। द्विवेदीजी ने खड़ी बोली का परिष्कार एवं अपने युग के रचनाकारों को कई तरह से प्रेरित किया। इन्होंने सरस्वती पत्रिका का कुशल सम्पादन किया। ये दूसरों की रचनाओं को ठीक करने में भी काफी मेहनत करते थे। ये कवि, निबन्धकार, अनुवादक तथा सम्पादकाचार्य थे। द्विवेदीजी ने अपने समय की सामाजिक-आर्थिक राजनीतिक स्थिति, अंग्रेजों द्वारा शोषण-दमन, आम जनता की कंगाली और भुखमरी तथा किसानों की निरन्तर बदतर होती हुई जिन्दगी के बारे में काफी विस्तार से लिखा है। किसानों की स्थिति के बारे में उन्होंने लिखा है कि लगान के अलावा पुलिस, स्कूल, पटवारी, चौकीदार, सिंचाई और सड़कों के लिए भी किसानों से टैक्स लिया जाता है। उन्होंने कहा कि शायद इसी से 1821 और 1909 के बीच मध्यप्रदेश में कोई 10 लाख से भी अधिक आदमी भूख से मर गये। इन समस्याओं से लड़ने के लिए द्विवेदीजी ने अपने सम्पत्तिशास्त्र में हर पेशे के लोगों को अपने संगठन या ट्रेड यूनियन बनाने की सलाह दी। हिन्दी भाषा और साहित्य के साथ ही समाज के उत्थान के लिए इन्होंने जो काम किया वह चिरस्मरणीय रहेगा। इनके मौलिक और अनूदित सभी ग्रन्थों की संख्या लगभग 80 है। कवि के रूप में इनको बहुत सफलता नहीं मिली। इनके काव्य संग्रहों में- काव्य-मंजूषा, काव्यकुब्ज, अबला-विलाप, गंगालहरी, ऋतुतरंगिणी, कुमार संभवसार आदि उल्लेखनीय हैं। इनके दो उदाहरण देखें -

तुम्हीं अन्नदाता भारत के सचमुच बैल राज महराज।
बिना तुम्हारे हो जाते हम दाना-दाना को मोहताज ॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध (1865-1947 ई.)

इनका जन्म आजमगढ़ जिले के निजामाबाद में हुआ था। इनका प्रिय-प्रवास खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य माना जाता है। प्रिय-प्रवास के कृष्ण समाज-सेवक के रूप में एवं राधा लोक-सेविका के रूप में चित्रित की गयी हैं। इनमें प्रेम का स्वरूप विलासिता का न होकर त्याग और समाज सेवा से भरा हुआ है। हरिऔधजी ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में रचनाएँ की हैं, किन्तु खड़ी बोली के विकास में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। इनकी रचनाओं में प्रिय-प्रवास, वैदेही वनवास, पारिजात, चोखे चौपदे, रसकलस, प्रद्यप्रसून, बोलचाल, काव्योपवन आदि उल्लेखनीय हैं। प्रिय-प्रवास पर इन्हें हिन्दी का सर्वोत्तम पुरस्कार- मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया था। यहाँ कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है।
दुख जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है।।
लखमुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ।
वह हृदय हमारा नैनतारा कहाँ है।



महत्वपूर्ण बिंदु -

महाकाव्य प्रियप्रवास में कवि ने राधा को केवल कृष्ण की हृदयेश्वरी, रस मंडल की सखी, परम सुन्दरी, अल्हड़, प्रेम विह्वल आदि रूपों का ही चित्रण नहीं किया है, बल्कि श्रीकृष्ण जैसे राष्ट्र नेता की विवेकिनी, सहचारी के रूप में चित्रित किया है। हिंदी के आधुनिककालीन साहित्य में राधा का प्राचीन रूप परिवर्तित हो गया है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त (1886-1964 ई.)

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म चिरगाँव (झाँसी) में हुआ था। ये द्विवेदी युग के कवियों में सर्वाधिक लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण कवि हैं। गुप्तजी ने घर पर ही संस्कृत, बँगला, अंग्रेजी और उर्दू का ज्ञान प्राप्त किया था। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी इनके शुभेच्छु एवं मार्गदर्शक थे, जिन्होंने लगातार सरस्वती में इनकी रचनाएँ प्रकाशित करके इन्हें यशस्वी बनाया। गुप्तजी प्रसिद्ध रामभक्त थे। इन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक प्रसंगों का आधार बनाकर और सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्थिति को ध्यान में रखकर अत्यन्त सरस और प्रभावशाली कविताएँ लिखी हैं। मुख्य रूप से ये राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के कवि थे। इनकी दृष्टि भारतीय जीवन के अतीत, वर्तमान भविष्य तीनों के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करती हुई विस्तृत काव्य फलक प्रस्तुत करती है। ये आदर्शवादी थे और इनका आदर्श युग सापेक्ष था। इनका काव्य मर्यादा एवं संयम की डोर से बँधा हुआ नवजागरण का उद्घोष करने में सर्वथा समर्थ सिद्ध हुआ। गुप्तजी की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं- 'रंग में भंग' (1909), जयद्रथ-वध (1910), भारत-भारती (1912), पंचवटी (1925), झंकार (1929), साकेत (1931), यशोधरा (1931), द्वापर (1936), जयभारत (1952), विष्णुप्रिया (1957)। सिद्धराज, हिडिम्बा, पृथ्वीराज आदि इनकी बाद की रचनाएँ हैं। गुप्तजी ने अनघ, तिलोत्तमा और चन्द्रहास नामक तीन छोटे-छोटे पद्यबद्ध रूपक भी लिखे हैं। प्लासी का युद्ध, मेघनाद-वध, वृत्र-संहार आदि इनके अनूदित काव्य हैं। गुप्तजी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति साकेत (1931) महाकाव्य है। साकेत की रचना की भी एक कहानी है। काव्य में कुछ कोमल नारी-चरित्रों की उपेक्षा को देखकर कविवर रवीन्द्रनाथ ने एक लेख लिखा था- काव्येर उपेक्षिता। इसमें उन्होंने लिखा था-हम कह सकते हैं संस्कृत साहित्य में काव्य-यज्ञशाला की प्रान्त भूमि में जो कितनी ही स्त्रियाँ अनादूत होकर खड़ी हैं, उनमें प्रधान स्थान उर्मिला का है।.... हाय, अव्यक्त वेदना देवी उर्मिला, एक बार तुम्हारा उदय प्रात:कालीन तारा की भाँति महाकाल के सुमेर शिखर पर हुआ था। उसके बाद अरुण लोक में तुम्हारे दर्शन नहीं हुए। कहाँ तुम्हारा उदयाचल है, और कहाँ अस्ताचल-यह प्रश्न करना भी लोग भूल गये। इसके कुछ दिनों बाद आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उर्मिला विषयक उदासीनता पर एक लेख लिखा। जिसमें उन्होंने लिखा था- खेद की बात है कि उर्मिला का उज्ज्वल चरित्र-चित्र कवियों के द्वारा जो आज तक उसी तरह ढकता आया। इन लेखों से

प्रेरित होकर गुप्तजी साकेत की रचना में लगे। इसकी शुरुआत 1914 में हुई थी।

साकेत की रचना में मुख्य प्रेरणा नारी के विषय में बदली हुई नवीन दृष्टि है। इस महाकाव्य की केन्द्र बिन्दु उर्मिला है। काव्य की सारी कथा उसी के चतुर्दिक् घूमती रहती है। चूँकि इसमें अयोध्या में होने वाली घटनाओं का ही वर्णन प्रधान है, इसलिए इसका नाम साकेत रखा गया। कथा का आरम्भ अयोध्या के राजभवन में होने वाले लक्ष्मण-उर्मिला के विनोद से होता है। फिर राम के अभिषेक की तैयारी से लेकर चित्रकूट में राम-भरत मिलन तक की कथा आठ सर्गों तक चलती है। उसके उपरान्त नवें सर्ग में उर्मिला की वियोगावस्था और उसकी नाना अन्तर्वृत्तियों, मनोदशाओं का अत्यन्त मार्मिक चित्रण है। दसवें सर्ग में उर्मिला सरयू को सम्बोधित करती हुई अपने जन्म से लेकर स्वयंवर तक की कथा स्मृति के रूप में या फ्लैशबैक के रूप में सुनाती है। ग्यारहवें सर्ग में दण्डकारण्य से लेकर लक्ष्मण को शक्ति लगने की घटनाओं का वर्णन है। बारहवें सर्ग में साकेत में युद्ध की तैयारी, लंका में युद्ध, राम का अयोध्या आगमन और उर्मिला-लक्ष्मण के मिलन का वर्णन है।

साकेत में गुप्तजी की दृष्टि गोस्वामीजी की मर्यादावादी दृष्टि से अलग है। रामचरितमानस के राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। किन्तु साकेत के राम भौतिक चेतना में संचालित हैं। वे कहते हैं-

संदेश नहीं मैं यहाँ स्वर्ग का लाया।
इस धरती को ही स्वर्ग बनाने आया।

साकेत के राम मानववादी हैं। गुप्तजी लिखते हैं-

राम तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो क्या?
तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करें।

6.5 अन्य कवि

द्विवेदी-युग के कुछ अन्य महत्वपूर्ण कवियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है। लाला भगवानदीन (1866-1930) - इन्होंने खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों में कविताएँ की हैं। इनका अध्ययन बहुत विशद था। इन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापन भी किया। इन्हें उर्दू-फारसी का भी अच्छा ज्ञान था। इनकी रचनाओं में वीर क्षत्राणी, वीर बालक और वीर पंचरत्न अधिक महत्वपूर्ण हैं। इन्होंने रामचन्द्रिका, कविप्रिया, दोहावली, कवितावली, बिहारी सतसई आदि की बहुत अच्छी टीकाएँ भी लिखी हैं। रायदेवी प्रसाद पूर्ण (1868-1915) - पूर्णजी आशु कवि थे। सन् 1915 में ये गोरखपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति हुए। ये पेशे से वकील थे और कभी-कभी कोर्ट में भी पद्य में बहस करते थे। इन्होंने रसिक समाज की स्थापना की थी। रचनाएँ- अमल्तास, वसंत वियोग, स्वदेशी कुण्डल इत्यादि। गयाप्रसाद शुक्ल सनेही (1883-1972)- ये ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में रचनाएँ करते थे। इन्हें समस्या-पूर्तियों में बड़ी रुचि थी। इनका खड़ी बोली काव्य एक प्रकार का टकसालीपन लिये हुए हैं। येत्रिशूल उपनाम से भी कविताएँ

लिखते थे। रचनाएँ- प्रेम पचीसी, कृषक क्रंदन, राष्ट्रीय मंत्र, राष्ट्रीय वीणा, त्रिशूल तरंग, संजीवनी और करुणा कादम्बिनी।

सत्यनारायण कविरत्न (1880-1918)

इनका जन्म, बाल्यकाल, विवाह और गार्हस्थ्य सब अत्यन्त दु:खद था। इन्हें सादगी बहुत पसन्द थी। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि इनका जीवन क्या था, जीवन की विषमता का एक छँटा हुआ दृष्टान्त था। इन्होंने भी ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में कविताएँ लिखी हैं। इनका भ्रमरदूत नारी के प्रति एवं देश के प्रति नये विचारों का परिचायक है।



अपनी प्रगति जाँचें:

प्रश्न 1 : द्विवेदी युग राष्ट्र की वर्तमान स्थिति का वर्णन स्थिति की चर्चा करें ?

प्रश्न 2 : मैथिलीशरण गुप्त जी का 'साकेत' महाकाव्य की चर्चा करें ?



6.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के अंतर्गत द्विवेदी युग की परिस्थितियों, काव्यागत विशेषताओं और प्रधान कवियों के व्यक्तित्वों से परिचित होंगे। द्विवेदी युगीन साहित्य सामाजिक उत्थान और राष्ट्रहित की बात करता है। देश की आजादी और उसकी अस्मिता की रक्षा के लिए आवाज उठाना उनका प्रमुख स्वर रहा है।



6.7 .प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर: यह युग सुधारवादी युग भी कहलाता है। इस के कवियों में सामाजिक समस्याओं यथा - दहेज प्रथा, नारी उत्पीड़न, छुआछुत, बाल-विवाह आदि को अपनी कविता का विषय बनाया। द्विवेदी युग की काव्य धारा ने उपेक्षित नारियों को अपने काव्य में स्थान दिया। अधिक जानने के लिए कृपया पाठ के अन्दर देखें।

प्रश्न 2 का उत्तर: साकेत महाकवि मैथिलीशरण गुप्त का लिखा महाकाव्य है जो 12 सर्गों में लिखा गया है। शुरुआती सर्गों में श्रीराम को वनवास का आदेश, अयोध्यावासियों का करुण-रुदन और वनगमन की झांकियां हैं। इकाई के अन्दर साकेत महाकाव्य का उल्लेख विस्तारपूर्वक किया गया है।



6.8 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
3. लक्ष्मी लाल बैरागी, हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का इतिहास, संघी प्रकाशन, जयपुर।
4. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।



6.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

7. 'सरस्वती पत्रिका' का प्रकाशन कब हुआ था?
8. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध के किसी एक रचना का नाम उल्लेख कीजिए।
9. 'झंकार' किसकी रचना है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. द्विवेदी युग के इतिहास का लेखा जोखा प्रस्तुत कीजिए।
2. द्विवेदी युगीन कवियों और उनकी रचनाओं का सामान्य परिचय दीजिए।
3. द्विवेदी युगीन काव्यों की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

*** ***** ***

इकाई 7 छायावाद

इकाई की रुपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 छायावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ

7.4 छायावादी कवियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

7.5 सारांश

7.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

7.7 अधिक जानने के लिए पढ़े

7.8 अभ्यास प्रश्न

7.1 उद्देश्य

यह इकाई हिन्दी साहित्य के इतिहास के छायावाद युग से संबंधित है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल के छायावाद युग विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- छायावाद युग की सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- हिन्दी साहित्य के विकास में छायावाद युग और उस युग के कवियों की विशेषताओं के बारे में जान पाएंगे।

7.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में आधुनिक काल के छायावादी युग की पृष्ठभूमि पर चर्चा है। इस इकाई में हम छायावादी युग की अवधारणा, परिस्थितियाँ, प्रवृत्तियाँ और प्रमुख कवियों आदि पर चर्चा करेंगे।

'छायावाद' हिन्दी कविता के कलात्मक उत्कर्ष का युग है। इसमें एक साथ ही कविता के कथ्य और शिल्प संबंधी सभी परंपरागत मानदण्ड बुरे तरीके टूट गये थे। इन परिवर्तनों को देखकर पुराने आचार्यों का चौंकना स्वाभाविक था। वे चौंके और इस नयी तरह की रचना–धारा के बारे में उनके जो विचार आये उनमें से अधिकांश अटकलों पर आधारित होने के कारण एकांगी और परस्पर विरोधी हो गये। छायावाद को जिन लोगों ने समझने और समझाने की कोशिश की है, उनमें से कुछ के विचार इस प्रकार हैं–

उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर पता लगता है कि 1920 के आस-पास छायावाद नाम का प्रचलन हो चुका था। सर्वप्रथम मुकुटधर पाण्डेय ने श्री शारदा पत्रिका में हिन्दी में छायावाद शीर्षक से तीन लेख प्रकाशित कराये थे जिनमें उन्होंने छायावाद की विशेषताओं- वैयक्तिकता, रहस्यवादिता, विचित्र प्रकाशन रीत, (वैशिष्ट्य) अस्पष्टता, कल्पनाशीलता आदि का उल्लेख करते हुए इसे भाव प्रकाशन का नया मार्ग कहा है। सरस्वती के जून 1921 के अंग में किन्हीं सुशील कुमार ने अपने संवादात्मक लेख में छायावादी कविता को टैगोर स्कूल की चित्रकला के समान अस्पष्ट बताया है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सुकविक्किंर नाम से मई 1927 के सरस्वती में आजकल के हिन्दी कवि और कविता शीर्षक लेख में लिखा कि छायावाद से लोगों का क्या मतलब है, कुछ समझ में नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी कविता कहना चाहिए। उनके अनुसार अन्योक्ति पद्धति ही छायावाद है।



महत्वपूर्ण बिंदु -

श्री शारदा पत्रिका: 1916, मासिक, जबलपुर, संपादक : नर्मदा प्रसाद मिश्र, द्वारिका प्रसाद मिश्र, सालग्राम द्विवेदी, संरक्षक: सेठ गोविन्द दास; छायावाद युग का श्रेष्ठ पत्र, इसने 1920 में छायावाद संबंधी लेखमाला प्रकाशित कर छायावाद को सर्वप्रथम मान्यता प्रदान की।

आगे चलकर आचार्य शुक्ल ने छायावाद और रहस्यवाद को समानार्थी मानते हुए इसमें विषय को गौड़ और शिल्प को प्रमुख माना। उन्होंने हिन्दी साहित्य का इतिहास में लिखा कि ईसाई सन्तों के छायाभास (फैंटसमाटा) तथा योरोपीय काव्यक्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीक वाद (सिंबॉलिज्म) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बांग्ला में ऐसी कविताएँ छायावाद कही जाने लगी थीं। यह वाद क्या लोगों के सामने आया, एक बने-बनाये रास्ते का दरवाजा-सा खुल पड़ा और हिन्दी के कुछ नये कवि उधर एक बारगी झुक पड़े। शुक्लजी ने अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए आगे लिखा है- छायावाद की कविता की पहली दौड़ तो बंगभाषा की रहस्यात्मक कविताओं के सजीले और कोमल मार्ग पर हुई। पर उन कविताओं की बहुत कुछ गतिविधि अंग्रेजी काव्य खण्डों के अनुवाद द्वारा संघटित देख, अंग्रेजी वाक्यों से परिचित हिन्दी कवि सीधे अंग्रेजी से ही तरह-तरह के लाक्षणिक प्रयोग लेकर उनके ज्यों के त्यों अनुवाद जगह-जगह अपनी रचनाओं में जड़ने लगे।

इस प्रकार आचार्य शुक्ल ने छायावाद को यूरोपीय और बांग्ला कविताओं की नकल मानते हुए उसे ऊटपटाँग चित्र और गाँव में नया-नया आया ऊँट बताते हुए उसका उपहास किया। बाद में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आचार्य शुक्ल के कथन का खण्डन

करते हुए स्पष्ट किया कि यह भ्रम ही है कि इस प्रकार के काव्यों को बांग्ला में छायावाद कहा जाता था और वहीं से यह शब्द आया है। छायावाद शब्द केवल चल पड़ने के कारण ही स्वीकारणीय हो सका है, नहीं तो इस श्रेणी की कविता की प्रकृति को प्रकट करने में यह शब्द एकदम असमर्थ है।.... छायावाद एक विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम था, ... वह पाश्चात्य प्रभाव नहीं था, कवियों की भीतरी व्याकुलता ने ही नवीन भाषा-शैली में अपने को व्यक्त किया....। महादेवी वर्मा ने छायावाद को आत्माभिव्यक्ति के लिए मनुष्य के हृदय की अकुलाहट का परिणाम माना। प्रसादजी की दृष्टि में कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया। मोती के भीतर छाया के जैसी तरलता होती है वैसी ही कान्ति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को संस्कृत साहित्य में छाया और विच्छिति के द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया था। छायावाद की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है- छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार के साथ सहानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह अंतर-स्पर्श करके भाव-समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया कान्तिमय होती है। ज्ञातव्य है कि जाने-अनजाने शुक्लजी ने भी छाया के महत्व को स्वीकार करते हुए लिखा है- छायावाद का सामान्य अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन। हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी नाम पुस्तक के 'महादेवी वर्मा' शीर्षक निबन्ध में आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने छायावाद की परिभाषा देते हुए कहा कि मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने छायावाद को हृदय की एक अनुकृति और डॉ॰ नगेन्द्र ने इसे स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह माना है। डॉ. देवराज के अनुसार छायावाद धार्मिक पौराणिक चेतना के विरुद्ध आधुनिक लौकिक चेतना का विद्रोह है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में जो निष्कर्ष सामने आते हैं उनमें दो तरह के विचारों को लक्षित किया जा सकता है। पहले तरह के लोगों में वे विद्वान हैं, जो छायावाद को अस्पष्टता, रहस्यवाद, छायाभास, आध्यात्मिकता, आध्यात्मिक छाया का भान और काव्यशैली या पद्धति विशेष मानते हुए इसे आयातित मानते हैं। हालाँकि योरोपीय और बँगला के प्रभाव को एकदम नकारा नहीं जा सकता है। इस सन्दर्भ में डॉ. जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव की यह टिप्पणी महत्वपूर्ण है कि इसकी स्वरूप निर्मित में अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन (रोमांटिसिज्म) की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह आन्दोलन पश्चिम में उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध तक चलता रहा है। छायावादी कविता उसके प्राय: अस्सी वर्ष बाद अस्तित्व में आयी, क्योंकि अंग्रेजी का पठन-पाठन इसी समय जोरों से होने लगा था। वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, शेली, कीट्स, वायरन, अल्फ्रेड टेनिसन आदि का प्रभाव छायावादी कवियों पर

व्यापक रूप में पड़ा। प्रभाव की बात तो ठीक है, किन्तु यदि कोई इन कविताओं को अन्य भाषाओं के कवियों का मात्र अनुवाद मानते है तो यह उचित नहीं है। यहाँ डॉ. कृष्णचन्द्रलाल की यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि छायावाद कवि यूरोपीय और बंगीय साहित्य से न तो सर्वथा अपरिचित थे और न अप्रभावित किन्तु छायावादी काव्य में यत्र-तत्र झलक मारने वाली इन छायाओं के आधार पर उसे उनकी नकल घोषित करना दुराग्रह मात्र है। काव्य-रचना के विषय में यह भ्रान्ति होनी ही नहीं चाहिए कि वह अपनी जमीन से भिन्न प्रवृत्ति वाली कविता की नकल करके प्राणवती हो सकती है।

दूसरी तरफ वे विचारक हैं जो छायावाद को यहाँ की परिस्थितियों की अनिवार्य उपज और विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम मानते हैं। इस सन्दर्भ में डॉ. नामवर सिंह कहते हैं कि छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से। डॉ. रामविलास शर्मा ने छायावाद के ऐतिहासिक महत्व को स्वीकार करते हुए माना है कि द्विवेदी युग की वैष्णवी श्रद्धा और सशंक नैतिकता के बदले पहले पहल अविश्वास और मानवीय प्रेम और श्रृंगार के स्वर सुनायी पड़ते हैं.,.... नये कवियों ने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए उस सामाजिक स्वाधीनता की माँग की जिसे पिछले युग के सामाजिक बन्धन दबाकर रखना चाहते थे। कुल मिलाकर छायावाद उस वैयक्तिक और राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना का प्रतीक है जिसमें हर तरह के सामाजिक शास्त्रीय और राष्ट्रीय बन्धनों को तोड़ देने की शक्ति है।

7.3 छायावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ

छायावाद की कुछ मुख्य प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं,-

1. वैयक्तिकता

छायावादी कवियों ने अपने व्यक्तिगत सुख-दु:ख, प्रेम-घृणा आदि भावनाओं को अपने काव्य में खुले आम व्यक्त किया है। इन कवियों ने निर्वैयक्तिकता का आवरण उतार फेका है। इस तरह की कविताएँ पाठक के साथ तुरन्त आत्मीय संबंध बना लेती हैं। निराला ने जब यह लिखा था कि मैंने मैं शैली अपनायी तो यह सिर्फ मैं शैली ही न होकर मैं की अभिव्यक्ति भी थी। इस प्रकार वैयक्तिकता की यह अभिव्यक्ति व्यक्ति की मुक्ति और उसकी स्वच्छन्दतावादी मानसिकता से भी जुड़ी हुई है। कुछ उदाहरण देखें-

रो-रोकर सिसक-सिसककर, कहता है मैं करुण कहानी।
तुम सुमन नोचते सुनते, करते जानी अनजानी ॥

- जयशंकर प्रसाद

इस तरह मेरे चितेरे हृदय की, वाह्य प्रकृति बनी चमत्कृत चित्र थी।
सरल शैशव की सुखद सुधि सी वहीं, बालिका मेरी मनोरम मित्र थी ॥

- पन्त

2. प्रकृतिप्रेम –

छायावादी कवि प्रकृति के प्रति अधिक संवेदनशील हैं। प्रकृति उनके लिए मात्र उद्दीपन या जड़ चीज न होकर संवेदना सम्पन्न, सचेतन और सप्राण सत्ता है। प्रकृति के हर एक रूप में छायावादी कवियों ने अपने भावों का दर्शन किया है। ये कवि पूरी हार्दिकता और आत्मीयता के साथ प्रकृति से अपने सुख–दु:ख की बातें करते हैं। प्रकृति से यह अत्यधिक लगाव इन कवियों की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की परिचायक है। मनुष्य प्रकृति की ओर मानव निर्मित व्यवस्था से असन्तुष्ट होकर भी जाता है। प्रकृति के पशु–पक्षियों, नदी–नाले, हवा–बादल सबमें इन कवियों को उन्मुक्त और निरंकुश स्वच्छन्दता के दर्शन हुए। महादेवी वर्मा प्रकृति को माँ के रूप में देखती हुई कहती हैं–

दुलरा देना बहला देना, यह तेरा शिशुजग है उदास।

इसी प्रकार पन्त मधुप–बाला से कहते हैं–

सिखा दो ना हे मधुप कुमारि ! मुझे भी अपने मीठे गान,
कुसुम के चुने कटोरों से, करा दो ना कुछ–कुछ मधुपान ॥

पन्त की इन पंक्तियों में प्रकृति से अतिशय अनुराग का परिचय मिलता है–

छोड़ द्रुमों की मुटु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले ! तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?
भूल अभी से इस जग को।

3. जिज्ञासा और रहस्य भावना –

छायावादी कवि सृष्टि की अपार सत्ता के प्रति जिज्ञासु है, प्रश्नाकुल है। वह अज्ञात सत्ता के नाना रूपों के प्रति आकर्षित है और उसके बारे में सबकुछ जान लेना चाहता है। कुछ लोगों ने छायावादी कविता की इस प्रवृत्ति को देखकर इसे रहस्यवादी कविता भी कहा है। किन्तु यह जानना चाहिए कि रहस्यवाद छायावाद की प्रवृत्ति है, पर्याय नहीं। इस तरह के कुछ उदाहरण देखें–

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि तूने कैसे पहचाना
कहाँ–कहाँ हे बाल विहंगिनी, पाया तूने यह गाना।

– पन्त

तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है।

– महादेवी वर्मा

न जाने नक्षत्रों से कौन, निमन्त्रण देता मुझको मौन ।

– पन्त

4. अतिशय कल्पनाशीलता और वायवीयता –

वैसे तो कल्पनाशीलता प्रत्येक युग में प्रत्येक कवि में पायी जाती है, किन्तु छायावादी

कवि अतिशय कल्पनाशील है। इसके पीछे कारण यह है कि छायावादी कविता में द्विवेदीयुगीन कविता की स्थूल वर्णनात्मकता की प्रतिक्रिया भी हुई है। कल्पना के अतिरेक के कारण ही कल्पना को छायावाद की रीढ़ कहा जाता है। यह कल्पना तत्कालीन परतन्त्रता और समाज के कठोर बन्धनों से मुक्ति का भी प्रतीक है, लेकिन कभी-कभी अत्यधिक वायवीय और अनियन्त्रित हो गयी है। फिर भी इस काल्पनिकता के कारण छायावादी कविता में कुछ बहुत अच्छे चित्र उपस्थित हो गये हैं। छाया को देखकर पन्त लिखते हैं-

तरुवर के छायानुवाद सी, उपमा सी, भावुकता सी
अविदित भावकुल भाषा सी, कटी छँटी नव कविता सी।

5. दुःख, वेदना और करुणा -

छायावादी कविता में वेदना और करुणा का स्वर प्रधान है। इस युग की कविताओं में आँसू, पीड़ा, वेदना, व्यथा, करुणा आदि भावों का प्रबल आवेग देखने को मिलता है। इनकी दृष्टि आत्म परिष्कारवादी थी। छायावादी कवियों ने इन भावों को बहुत महत्व दिया है-

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अन्जान।

- पन्त

इस करुणा-कलित हृदय में, अब विकल रागिनी बजती।
क्यों हाहाकार स्वरों में, वेदना असीम गरजती।

- प्रसाद

6. पलायन और अतीत के प्रति मोह -

छायावादी कवि अत्यधिक भावुक है। उसे जीवन की कठोरता और नीरसता अच्छी नहीं लगती। जीवन और समाज की कठिन चुनौतियों का सामना न कर पाने के कारण या तो वह अपने मनोनुकूल काल्पनिक लोक रच लिया करता था या अतीत की मोहक स्मृतियों में डूबकर धरती का दुःख-सुख भूल जाता था। लेकिन यह पलायन एक तरह का विश्राम भी था-

ले चल वहाँ भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे-धीरे
जिस निर्जन में सागर लहरी, अम्बर के कानों में गहरी,
निश्छल प्रेम कथा कहती हो, तज कोलाहल की अवनी रे।
कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल

- प्रसाद

7. नारी के प्रति नवीन दृष्टि -

छायावादी कवियों की दृष्टि सर्वथा नवीन और प्रगतिशील है। प्राचीन साहित्य में नारी जहाँ माया और पुरुष के पतन का कारण मानी जाती थी या अधिक से अधिक भोग की वस्तु, वहीं छायावादी काव्य में वह जननि सखी प्यारी, देवि माँ सहचरि प्राण और पुरुष की प्रेरणा बन गयी। नारी के प्रति इस बदली हुई दृष्टि के पीछे उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में चलाये गये अनेक सामाजिक सुधार संबंधी आन्दोलनों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है, जिसके परिणामस्वरूप स्त्री-शिक्षा, स्त्री-जागरण, नारी मुक्ति आदि की भावना तेज हुई थी। यहाँ नारी सौन्दर्य का पुंज भी है और प्रेरणा-पुंज की। कामायनी की श्रद्धा, निराला की तुलसीदास की रत्नावली ऐसी ही नारियाँ हैं। नारी के विविध रूपों के कुछ उदाहरण देखें-

तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा स्नान
तुम्हारी वाणी में कल्याणि,
त्रिवेणी की लहरों में गान।

- पन्त

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में,
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।

- प्रसाद

वह तोड़ती पत्थर देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर।

- निराला

8. प्रेम और उदात्त सौन्दर्य -

दृष्टि-मधुर प्रेम की एक तरल अन्तर्वर्ती धारा समूचे छायावादी काव्य में अनवरत प्रवाहित होती हुई लक्षित होती है। इन कवियों ने प्रेम को अपराध नहीं माना है। सारे सामाजिक निषेधों और रूढ़िग्रस्त मर्यादाओं को चुनौती देते हुए इन कवियों ने अपने प्रेम की स्पष्ट चर्चा की है। इनके प्रेम में कहीं भी जाति, धर्म और ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं है। इन कवियों ने नारी के आन्तरिक और बाह्य दोनों रूपों का अत्यन्त जीवन्त और प्रभावशाली चित्रण किया है। यहाँ नारी का शालीन रूप भी है और उद्दाम मांसल रूप भी। इस सौन्दर्य चित्रण के लिए इन कवियों ने प्राकृतिक उपमानों और प्रतीकों का सहारा लिया है। हर तरह के उदाहरण प्रस्तुत हैं-

संयोग-

नीरव निशीथ में लतिका सी, तुम कौन आ रही हो बढ़ती।
कोमल बाहें फैलाये सी, आलिंगन का जादू पढ़ती।

– प्रसाद

वियोग–

हाय मेरे सामने ही प्रणय का, ग्रन्थि बंधन हो गया वह नव सुमन,
मधुप सा मेरा हृदय लेकर किसी, अन्य मानव का विभूषण हो गया।

– पन्त

9. राष्ट्रीय जागरण, शक्ति और स्वाधीनता –

छायावादी काव्य सामाजिक–सांस्कृतिक जागरण एवं राष्ट्रीय स्वाधीनता का काव्य है। उस काल का समाज जगा हुआ समाज है। वह जगा हुआ समाज शक्ति संचित करके अन्यायी अत्याचारी शासकों से संघर्ष करना चाहता है। इसके लिए इस युग के कवियों ने अपने देश के गौरवमय अतीत का वर्णन करके लोगों में उत्साह भरा है और उन्हें जगाते हुए संघर्ष के लिए प्रेरित किया है। इस तरह के विचार प्रसाद, पन्त, निराला एवं महादेवी वर्मा सभी कवियों की कविताओं में व्यक्त हुए हैं।

जागरण –

बीती विभावरी जाग री !
अम्बर पनघट में डूबो रही, ताराघट उषा नागरी।

– प्रसाद

देशप्रेम–

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती–
अमर्तयवीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है– बढ़े चलो, बढ़े चलो

– प्रसाद

शेरों की माँद में, आया है आज स्यार जागो फिर एक बार

– निराला

10. स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह –

छायावादी कवियों ने पूर्ववर्ती कविता की इतिवृत्तात्मक वर्णन प्रणाली और उपदेशात्मकता के स्थान पर सूक्ष्मता को अधिक महत्व दिया। एक उदाहरण प्रस्तुत है –

दिवसावसान का समय/मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी सी/धीरे-धीरे धीरे।

- निराला

7.4 छायावादी कवियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

जयशंकर प्रसाद (सन् 1889-1937 ई.)

जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रवर्तक और उसे पूर्ण उत्कर्ष प्रदान करने वाले गौरवशाली कवि हैं। इनका जन्म काशी के एक प्रतिष्ठित व्यापारी परिवार में हुआ था। स्वाध्याय और लगन के कारण इन्होंने कई भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। बचपन में ही पिता और बड़े भाई की मृत्यु के कारण व्यापार और परिवार का सारा भार इन पर आ पड़ा। पत्नियों के निधन के कारण इन्हें तीन शादियाँ करनी पड़ीं। तीसरी पत्नी से एकमात्र पुत्र रत्नशंकरजी का जन्म हुआ। प्रसादजी का जीवन बड़े ही संघर्ष में व्यतीत हुआ। दु:ख-दर्द हमेशा इनके साथ लगे रहे जिसकी अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं में देखने को मिलती है।

प्रसादजी ने आरंभ में कलाधार उपनाम से ब्रजभाषा में कविताएँ लिखीं, किन्तु बाद में ये खड़ी बोली में कविता करने लगे। ये मूलत: प्रेम, मादकता, आनन्द और प्रेरणा के कवि हैं। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। इन्होंने कविता के अतिरिक्त कहानी, उपन्यास, नाटक और निबन्ध भी लिखे हैं। इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं- कविता - उर्वशी, वनमिलन, प्रेमराज्य (1909), अयोध्या का उद्धार, शोकोच्छवास (1910), कानन कुसुम, प्रेम-पथिक, करुणालय (1913), महाराणा का महत्व (1914), झरना (1918), आँसू (1925), लहर (1933), कामायनी (1936)। नाटक-राजश्री, विशाख, कामना, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, स्कन्दगुप्त, एक घूँट, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी। कहानी - प्रतिध्वनि, छाया, आँधी, आकाशदीप, इन्द्रजाल। उपन्यास-कंकाल, तितली, इरावती। निबन्ध - काव्य कला तथा अन्य निबन्ध। प्रसादजी की आरम्भिक रचनाओं पर द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियों का प्रभाव है, किन्तु उनमें द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता के प्रति विद्रोह भी झलकता है। आरम्भ की रचनाओं में संकोच का भाव है लेकिन झरना की कविताओं में विस्तार और प्रौढ़ता के दर्शन होने लगते हैं। वस्तुत: झरना में ही छायावाद की समस्त प्रवृत्तियाँ पहली बार लक्षित होती हैं। प्रसादजी की ख्याति का आरम्भ 1925 से हुआ जब 'आँसू' का प्रकाशन हुआ। आँसू एक स्मृति-काव्य है जिसका आरम्भ मन के गहरे विषाद, अवसाद और हाहाकार से होता है। और अन्त होता है विश्व कल्याण एवं लोकमंगल की भावना से। आँसू का प्रथम संस्करण मुक्तक काव्य के रूप में आया था किन्तु आठ वर्ष बाद प्रकाशित दूसरे संस्करण में कवि ने इसमें चौंसठ छन्द और जोड़ दिये तथा इसके रूप विधान में ऐसे परिवर्तन किये जिससे वह प्रबन्ध-गीति जैसा हो गया। इसमें कवि की मार्मिक वेदना की ऐसी रचनात्मकता यात्रा है जिसमें अतीत की मोहक विरह-वेदना के साथ ही एक समष्टिमूलक जीवन-दर्शन भी काम करता रहता है।

कवि ने विविध प्राकृतिक उपमानों के माध्यम से प्रेम की टीस और सौन्दर्य की सुकुमारता को सघन और सुन्दर अभिव्यक्ति दी है। लहर प्रसाद के कुछ प्रगीतों और चार लंबी कविताओं का संकलन है। इसमें छायावादी शैली में अनेक प्रतीकों के माध्यम से मानव भावनाओं को व्यक्त किया गया है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला (सन् 1896-1961 ई.)

निरालाजी का जन्म बंगाल के महिषा दल राज्य के मेदिनीपुर रियासत में हुआ था। इनका पैतृक गाँव गढ़ाकोला (उन्नाव उत्तर प्रदेश) था। इनके पिता पं. रामसहाय तिवारी भाइयों से रुष्ट होकर अपना पैतृक गाँव छोड़कर कलकत्ता चले गये थे। वहाँ वे बंगाल पुलिस में और फिर महिषा दल के राजा के अंगरक्षक के रूप में कार्य करने लगे। निराला का जन्म वहीं हुआ। इनका बचपन का नाम सुर्जकुमार था। इन्हें अंग्रेजी, संस्कृत, बांग्ला और हिन्दी का विशद ज्ञान था। शास्त्रीय संगीत और चित्रकला में भी इनकी रुचि थी। ये व्यायाम एवं खेलकूद पर भी ध्यान देते थे। निराला की शादी 1911 में हुई। 1914 में पुत्र रामकृष्ण और 1917 में पुत्री सरोज का जन्म हुआ। 1918 में पत्नी का देहान्त हो गया। 1920 में इन्होंने 'मतवाला' का सम्पादन शुरू किया। सरोज का विवाह सन् 1930 और देहावसान 1935 में हुआ। इन्हें जिन्दगी में उपेक्षा, अपमान और सम्मान सब कुछ मिला। 15 अक्टूबर 1961 को इनका देहान्त हुआ।

निरालाजी की रचनाएँ इस प्रकार हैं-

काव्य-परिमल (1930), गीतिका (1936), अनामिका, तुलसीदास (1938), कुकुरमुत्ता (1942), अणिमा (1943), बेला (1946), नये पत्ते (1946), अर्चना (1950), आराधना (1952), गीतकुंज (1954), सान्ध्यकाकली (1969)। गद्य रचनाएँ - लिली, सुकुल की बीबी, निरुपमा, अप्सरा, अलका, चोटी की पकड़, कुल्लीभाँट, बिल्लेसुर बकरिहा, चतुरीचमार, चाबुक, चयन, प्रबन्ध-प्रतिमा, प्रबन्ध-पद्म आदि।

निराला सतत प्रगतिशील, विद्रोही और परिवर्तन के आकांक्षी कवि हैं। उन्हें किसी युग की सीमा में रखकर नहीं देखा जा सकता। इसीलिए मुख्यत: छायावाद के कवि होते हुए भी उन्होंने छायावादी मूल्यों का लगातार अतिक्रमण किया है। निराला ने कभी भी किसी बनी-बनायी लीक या परम्परा का अनुकरण नहीं किया। उन्होंने अपने लिए हमेशा नयी राहों और नयी कसौटियों का निर्माण किया और जरूरत पड़ने पर अपने द्वारा बनायी गयी कसौटियों को भी उन्होंने बार-बार तोड़ दिया। वे अपनी काव्य-यात्रा में लगातार झटके देते चलते हैं। यही कारण है कि उनके मूल्यांकन के लिए बनायी गयी कसौटियाँ हमेशा छोटी पड़ जाती हैं और निराला हमेशा बड़े साबित होते हैं। सामान्य ढंग से देखने पर उनकी रचनाओं में किसी एक सूत्र या एकतानता के दर्शन नहीं होते किन्तु गम्भीरता से देखने पर उनमें एकसूत्र बहुत स्पष्ट लक्षित होता है और वह है-मानवतावादी सूत्र। निराला मानव जीवन के विशाल रण-क्षेत्र में चल रही परस्पर विरोधी शक्तियों-मानवीय और अमानवीय शक्तियों के महासमर के उन्मुक्त गायक हैं। उनका जीवन भी तो एक महासमर ही था।

प्रगतिशीलता निराला के व्यक्तित्व का पर्याय थी। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि जिन दिनों पंत जी दुमों की मृदु छाया छोड़कर कहीं और जाने को तैयार नहीं थे, प्रसादजी रो-रोकर सिसक-सिसक कर करुण कहानी सुना रहे थे, महादेवी नीर भरी दु:ख की बदरी बनकर बरस रही थीं, ठीक उन्हीं दिनों छायावाद के उत्कर्ष काल में निराला तोड़ती पत्थर लिख रहे थे। यह भी महत्वपूर्ण बात है कि जिन दिनों छायावाद के अन्य कवि अत्यन्त सूक्ष्म और अशरीरी प्रेम और प्रकृति की कविताएँ लिख रहे थे, निराला ने अपनी पहली कविता जूही की कली (1916) में उद्दाम शारीरिक मांसल प्रेम का वर्णन किया जो तत्कालीन परिवेश में एक विद्रोही और प्रगतिशील कदम था।

निराला ने कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर सार्थक वैविध्य का परिचय दिया है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है। उनकी दृष्टि जीवन और जगत् के सभी रूपों पर थी। इसीलिए उन्होंने जहाँ एक तरफ जूही की कली, प्रेयसी, शेफालिका, बाँधो न नाव जैसी प्रेम कविताएँ लिखीं, वहीं विधवा, भिक्षुक, दान, बादलराग, तोड़ती पत्थर, बुआजी का खजोहरा, राजे ने अपनी रखवाली की, देवी सरस्वती, कुकुरमुत्ता आदि विषयों पर भी कविताएँ लिखी जिनमें सामाजिक असमानता और अन्याय पर कहीं व्यंग्यात्मक और कहीं आक्रोश भरे स्वर में प्रहार किया गया है। उन्होंने सहज चित्रात्मक और बिम्बधर्मी भाषा में प्रकृति-प्रेम सम्बन्धी कविताएँ भी लिखी हैं, तथा सघन, गम्भीर और ओजमयी शैली में कई राष्ट्रीय- सांस्कृतिक विचारों से सम्पन्न कविताएँ भी लिखी हैं। उनकी इन्हीं विशेषताओं को लक्षित करके आचार्य शुक्ल ने उन्हें बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा का कवि कहा था।

सुमित्रानन्दन पन्त (1900-1977 ई.)

कोमल कल्पना, सुकुमार संवेदना और नैसर्गिक सौन्दर्य के कवि पन्त का जन्म अल्मोड़ा से 32 मील उत्तर कौसानी ग्राम में हुआ था। जन्म के कुछ ही घण्टे बाद माँ सरस्वती देवी का देहान्त हो जाने के कारण इनका पालन-पोषण बुआ के हाथों हुआ। बचपन का नाम गोसाईं दत्त था। इनकी आरम्भिक शिक्षा गाँव में हुई। बनारस और इलाहाबाद में इन्होंने अध्ययन किया। कुछ दिनों तक कालाकाँकर राज्य में रहे। इनका बचपन प्रकृति की नैसर्गिक गोद में व्यतीत हुआ। उन्हें प्रकृति का सुकुमार कवि कहा जाता है। उन्होंने लिखा है- कविता की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी मुझे याद है, घण्टों एकान्त में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था, और कोई आकर्षण मेरे भीतर, एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था ..... प्रकृति के साहचर्य ने जहाँ एक ओर सौन्दर्य, स्वप्न और कल्पनाजीवी बनाया, वहीं दूसरी ओर जन-भीरु भी बना दिया। पंत जी की रचनाएँ इस प्रकार हैं- वीणा, उच्छवास, पल्लव, ज्योत्सना, गुंजन आदि।

महादेवी वर्मा (1907-1984 ई.)

छायावादी कवियों में महादेवीजी सबसे अलग हैं। इनका जन्म फर्रुखाबाद में हुआ था। इन्होंने एम.ए. की परीक्षा संस्कृत में उत्तीर्ण की थी। ये प्रयाग महिला विद्यापीठ की

प्रधानाचार्य भी थीं। कविता का संस्कार इन्हें अपने नाना और माँ से मिला था। नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्य गीत, यामा (पूर्ववर्ती संग्रहों का संकलन) दीपशिखा आदि उनके महत्वपूर्ण काव्य संग्रह हैं। महादेवीजी की रचनाओं में वेदना और करुणा का भाव प्रधान है। पीड़ा, दु:ख, व्यथा, विस्मय, जिज्ञासा, प्रणय-निवेदन, अज्ञात सत्ता के प्रति आकर्षण आदि भावनाओं की अभिव्यक्ति इनकी आरम्भ से लेकर अन्त की रचनाओं में होती रही है। दु:ख उन्हें बहुत प्रिय है, वे लिखती हैं- दु:ख मेरे निकट जीवन का एक ऐसा काव्य है, जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है।.... मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, किन्तु दु:ख सबको बाँटकर...। वे आगे लिखती हैं- मुझे दु:ख के दोनों ही रूप प्रिय हैं, एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतना का क्रंदन है। उन्हें बौद्ध दर्शन की करुणा भी प्रभावित करती रही है। अपने दुखवाद के विषय में वे रश्मि की भूमिका में लिखती हैं-सुख और दु:ख के धूप-छाहीं डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे दु:ख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिए किसी समस्या को सुलझा डालने से कम नहीं है। संसार साधारणत: जिसे दु:ख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दु:ख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है। महादेवीजी का यह कथन सत्य नहीं लगता। वास्तविकता क्या है, यह तो बहुत स्पष्ट नहीं है किन्तु सुख की प्रतिक्रिया में दु:ख को जबर्दस्ती ओढ़ लेने की बात न तो विश्वसनीय लगती है और न ही उचित। सुख से ऊबकर दु:ख भोगने की इच्छा कुछ ऐसी ही जैसे रईस लोग रोज-रोज के बढ़िया भोजन से ऊबकर कभी-कभी खिचड़ी या सत्तू के लिए मचलने लगते हैं। यानि जैसे पाश्चात्य देशों के कुछ व्यक्ति कम उम्र में ही जीवन के सारे सुख भोग लेने के बाद उनसे ऊबकर अधनंगे होकर इधर-उधर लोटते फिरते हैं। और यदि यही मान लें कि महादेवीजी की रचनाओं में व्यक्त दु:ख, सुख की प्रतिक्रिया में न होकर उनके जीवन का वास्तविक दु:ख ही है, तब भी प्रश्न यह उठता है कि इस दु:खाभिव्यक्ति का समाज के लिए रचनात्मक उपयोग क्या है? वे अपने दु:ख और वेदना में सन्तुष्ट दिखायी पड़ती हैं, इसलिए उससे मुक्ति नहीं चाहती।

महादेवीजी कहीं-कहीं समाज से जुड़ती हुई और समाज के प्रति समर्पित होती हुई- सी लगती हैं। उनका यह दु:खवाद और समाज से जुड़ाव कुछ-कुछ प्रयोगवादी कवियों, विशेषकर अज्ञेय जैसा लगता है। किन्तु अज्ञेय झिझक के साथ ही सही जहाँ कहते हैं इसको भी पंक्ति को दे दो, वहीं महादेवीजी की झिझक और उनका संशय बना रहता है। वे प्रकृति जननी से पूछती हैं- ''कह दे माँ अब क्या देखूँ खिलती कलियाँ या प्यासे सूखे अधरों को .....तेरा वैभव देखूँ या जीवन का क्रंदन देखूँ।'' यह स्पष्ट है कि अपनी कविताओं में वे प्यासे सूखे अधरों को नहीं देख सकी हैं। अन्तत: वे यही निर्णय करती हैं कि यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो। या पंथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला। महादेवीजी

के प्रणय-निवेदन सम्बन्धी गीतों में एक नारी सुलभ संकोच भी है जिसके कारण वे अपने भावों को भाषा की अनेक पतों में लपेट कर प्रस्तुत करती हैं। इसीलिए उनकी दोहरी व्याख्या होती है, कभी उन्हें श्रृंगारी समझा जाता है, कभी रहस्यवादी।



7.5 सारांश

द्विवेदी युग की निराश उपदेशात्मक और इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध छायावाद का उदय हुआ। छायावाद मूलत: हिंदी साहित्य के रोमांटिक उत्थान की काव्यधारा है। प्रसाद, पन्त, निराला और वर्मा इस युग के प्रतिनिधि कवि थे। लेकिन छायावाद नामकरण का श्रेय जाता है मुकुटधर पाण्डेय को, जिन्होंने श्री शारदा में एक निबंध प्रकाशित किया और जिसमे छायावाद शब्द का प्रथम प्रयोग किया। प्रकृति प्रेम, नारी, मानवीकरण, सांस्कृतिक जागरण, कल्पना की प्रधानता इस युग की प्रमुख विशेषता हैं। छायावाद ने हिंदी में खड़ीबोली कविता को पूर्णत: प्रतिष्ठित कर दिया था। हिंदी साहित्य जगत में इस काव्यधारा का विशेष महत्व है।



7.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर - छायावाद की कविता की पहली दौड़ तो बंगभाषा की रहस्यात्मक कविताओं के सजीले और कोमल मार्ग पर हुई। अधिक जानने के लिए कृपया इकाई पढ़े।

प्रश्न 2 का उत्तर - नारी के प्रति छायावाद ने सर्वथा नवीन दृष्टिकोण अपनाया है। यहां नारी वासना की पूर्ति का साधन नहीं है,यहां तो वह प्रेयसी,जीवन-सहचरी,मां आदि विविध रूपों में उतरी है। उसका मुख्य रूप प्रेयसी का ही रहा है। यह प्रेयसी पार्थिव जगत की स्थूल नारी नहीं है,वरन कल्पना लोक की सुकुमारी देवी है। इकाई में इसकी चर्चा विस्तारपूर्वक किया गया है।



7.5 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
3. लक्ष्मी लाल बैरागी, हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का इतिहास, संघी प्रकाशन, जयपुर।
4. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।



7.6 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. 'नीरजा' किसकी रचना है ?
2. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के किसी एक रचना का नाम बताएं ?
3. 'उर्वशी' किसकी रचना है ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. छायावाद से आप क्या समझते हो ? छायावाद के ऊपर एक आलेख प्रस्तुत कीजिए।
2. छायावाद स्थूल के खिलाफ सूक्ष्म का विद्रोह है- तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।
3. प्रमुख छायावादी कवि और उनके कृतियों का उल्लेख करते हुए इस काल के किन्ही पांच विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 8 प्रगतिवाद

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 प्रगतिवादी काव्य की विशेषताएँ

8.4 प्रमुख प्रगतिवादी कवि और उनकी रचनाएँ

8.5 सारांश

8.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

8.6 अधिक जानने ले लिए पढ़े

8.7 अभ्यास प्रश्न

8.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- प्रगतिवाद के विषय में ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे।
- हिंदी काव्य साहित्य के इतिहास में प्रगतिवादी काव्यधारा की भूमिका के विषय में जान सकेंगे।
- प्रगतिवादी काव्यधारा की विशेषताओं से परिचित हो पाएंगे।
- प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रमुख कवि तथा उनके रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।

8.2 प्रस्तावना

'प्रगति' शब्द का अर्थ है – आगे बढ़ना। किंतु हिंदी साहित्य में जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद या मार्क्सवाद के रूप में जानी जाती है, वही साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद के नाम से जानी जाती है। साम्यवादी विचारधारा के अनुरूप लिखी गयी कविता ही प्रगतिवादी कविता है। साम्यवादी विचारधारा में समाज को दो वर्गों में बांटा जा सकता है : पहला शोषक वर्ग और दूसरा शोषित वर्ग। साम्यवादी विचारक समाज में समता स्थापित कर शोषण की प्रक्रिया को जड़ से खत्म करना चाहते थे। इसलिए प्रगतिवादी कविता में भी शोषण के प्रति विद्रोह का भाव देखा जाता है।

प्रगतिवादी काव्यधारा का प्रारंभ सन् 1936 से माना जाता है। प्रगतिवादी काव्यधारा मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भावबोध को अपना लक्ष्य बना कर चली। प्रगतिवादी काव्यधारा के उद्भव तथा विकास में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितिओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही साथ ही साथ छायावाद की जीवनशून्य होती हुई व्यक्तिवादी

वायवी काव्यधारा भी सहायक हुई। रूस में मार्क्सवादी दर्शन के आधार पर साम्यवाद की स्थापना हुई, जो वहाँ के जनजीवन को विषम संकट और संघर्ष से गुजरते हुए सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व स्थापना में बल प्रदान कर रहा था। वहाँ सामान्य जन को महत्ता प्राप्त हो रही थी, नए-नए सुख-सुविधा के साधनों की प्रतिष्ठा हो रही थी। भारतीय बुद्धिजीवी एक ओर तो अपने समाज में उत्पन्न अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक विसंगतियों को देख रहे थे तो दूसरी ओर रूस में साम्यवाद से प्रभावित नवीन समाज को देख रहे थे। रूस में प्रतिष्ठित साम्यवाद और पश्चिम के अन्य देशों में फैलता हुआ मार्क्सवादी दर्शन भारतीय बुद्धिजीवियों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बना। भारत में व्याप्त गरीबी, अशिक्षा, अकाल, युद्ध की विभीषिकाओं के कारण जनता आक्रांत हो रही थी और इन परिस्थितिओं से बाहर निकालने का प्रयत्न कर रही थी, जगती हुई जन चेतना तथा रूस में स्थापित समाजवाद, पश्चिम के देशों में फैली मार्क्सवाद के प्रभाव के कारण भारत में सन् 1935 के आसपास साम्यवादी आंदोलन आरम्भ हुआ, साहित्य भी इससे प्रभावित हुआ और प्रगतिवादी साहित्य का आंदोलन आरम्भ हुआ। सन् 1935 में ई. एम. फार्सटर के सभापतित्व में पेरिस में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' नामक अंतर्राष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन हुआ। सन् 1936 में सज्जद जहीर और डॉ. मुल्कराज आनंद के प्रयत्नों से भारत में भी इस संस्था की शाखा खुली और मुंशी प्रेमचंद्र की अध्यक्षता में लखनऊ में इसका प्रथम अधिवेशन हुआ। इस प्रकार प्रगतिवाद साहित्य तथा आलोचना के क्षेत्र में एक नवीन दृष्टिकोण अपनाकर सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति पर जोड़ देने लगा। प्रगतिवाद एक व्यापक साहित्यिक आंदोलन के रूप में उभरा और हिंदी कविता को यथार्थ से, यथार्थ बोध के अनेक रूपों से जोड़ फलस्वरूप हिंदी कविता ने प्रत्यक्ष जीवन, लोकरूपों, लोक प्रचलित छंदों का नया उपयोग किया और नयी संभावनाएँ खोजी।

8.3 प्रगतिवादी काव्य की विशेषताएँ

प्रगतिवादी काव्यधारा की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है-

8.3.1 शोषकों के प्रति विद्रोह और शोषितों के प्रति सहानुभूति-

प्राय:सभी प्रगतिवादी कवियों ने किसान, मजदूर पर किए जानेवाले पूँजीपतियों के शोषण, अत्याचार के प्रति अपना विद्रोह का भाव व्यक्त किया है।

8.3.2 आर्थिक और सामाजिक समानता पर बल -

प्रगतिवादी कवियों ने आर्थिक एवं सामाजिक समानता पर बल देते हुए निम्न वर्ग और उच्च वर्ग के अंतर को समाप्त करने पर जोड़ दिया है।

8.3.3 क्रांति की भावना -

समाज में समता लाने के लिए मार्क्सवाद में क्रांति का समर्थन किया गया। इसलिए प्रगतिवादी काव्यधारा के कवियों की वाणी में शोषक वर्ग द्वारा सर्वहारा वर्ग पर किए जानेवाले अत्याचार, शोषण के विरूद्ध क्रांति की भावना देखी जाती है।

8.3.4 नारी शोषण को समाप्त करना-

प्रगतिवादी काव्य में नारी को उपभोग की वस्तु न मानते हुए नारी को एक सम्मानजनक स्थान दिया है। प्रगतिवादी कवियों ने नारी का यथार्थ रूप में चित्रण किया है।

8.3.5 धर्म और ईश्वर के प्रति अनास्था-

प्रगतिवादी कवि धर्म और ईश्वर को शोषण का एक साधन मानते हैं। इसीलिए प्रगतिवादी काव्यधारा में धर्म और ईश्वर के प्रति अनास्था का भाव देखा जाता है।

8.3.6 प्रतीकों का प्रयोग-

प्रगतिवादी काव्यधारा के कवियों ने अपनी भावनाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने के लिए विविध प्रतीकों का सहारा लिया है।

8.3.7 सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण-

प्रगतिवादी काव्यधारा के कवियों ने कल्पना का सहारा न लेते हुए यथार्थ के धरातल पर उतरकर अपनी काव्य रचना की है। मानव जीवन में व्याप्त दुख, भूख, गरीबी, बेरोजगारी आदि का यथार्थ रूप में चित्रण किया है।

8.4 प्रमुख प्रगतिवादी कवि और उनकी रचनाएँ

प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रमुख कवि और उनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

8.4.1 केदारनाथ अग्रवाल (1911-2000)

केदारनाथ अग्रवाल का जन्म कमासिन, जिला बांदा में हुआ था। केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि है। इनके कविताओं में मानव और प्रकृति के सौंदर्य का बड़ा सहज, वेगवान और उन्मुक्त रूप देखने को मिलता है। केदारनाथ अग्रवाल द्वारा रचित काव्य संग्रहों के नाम हैं- युग की गंगा (1947), नींद के बादल (1947), लोक और आलोक (1957), फूल नहीं रंग बोलते हैं (1965), आग का आईना (1970), समय-समय पर (1970), गुलमेहंदी (1978), पंख और पतवार(1979), बम्बई का रक्त स्नान (1981), हे मेरी तुम! (1981), मार प्यार की थापें (1981), कहें केदार खरी-खरी (1983), अपूर्वा (1984), जमुन जल तुम (1984), बोले बोल अबोल(1985), जो शिलाएँ तोढ़ते हैं (1985), आत्मगंध (1988), अनहारी हरियाली (1990), खुली आँखें खुले डैने (1993), पुष्पदीप 1994, बसंत में प्रसन्न पृथ्वी 1996, कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह आदि।

8.4.2 राम विलास शर्मा (1912-2000)

राम विलास शर्मा का जन्म झांसी में हुआ था। ये 'प्रगतिशील लेखक संघ' के मंत्री तथा 'हंस' के संपादक रहे। इनकी कविताओं में सादगी, वेग, सहजता का चित्रण हुआ है। ये प्रगतिवादी समीक्षक के रूप में भी ख्यात है। इनके द्वारा रचित काव्य संग्रहों के नाम इस प्रकार हैं- रूप तरंग, बुद्ध वैराग्य तथा प्रारम्भिक कविताएँ(1997) आदि।

8.4.3 नार्गाजुन (1910-1998)

नार्गाजुन का वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र है। नार्गाजुन का जन्म तरौनी, जिला दरभंगा में हुआ था। 'यात्री' के नाम से मैथिली भाषा में भी इन्होंने कविताएँ लिखी है। कवि के साथ-साथ ये हिंदी के प्रमुख उपन्यासकार भी हैं। इनकी कविताएँ मुख्यत: तीन तरह की हैं, कुछ कविताएँ गम्भीर, संवेदनात्मक और कलात्मक है। कुछ कविताएँ व्यंग्यात्मक है तो कुछ उद्‌बोधनात्मक है। नार्गाजुन द्वारा लिखित काव्य : संग्रह इस प्रकार हैं- युगधारा (1956), सतरंगे पंखों वाली (1959), प्यासी पथराई आँखें (1962), भस्मांकर (1971), तालाब की मछलियाँ (1975), खिचड़ी विप्लव देखा हमने (1980), तुमने कहा था (1980), हजार-हजार बाहों वाली (1981), पुरानी जूतियों का कोरस (1983), रत्नगर्भ (1984), ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या! (1984), आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने (1986), इस गुब्बारे की छाया में (1990), भूल जाओ पुराने सपने (1994), अपने खेत में (1997), भूमिजा आदि।

8.4.4 रांगेय राघव (1923-1962)

रांगेय राघव प्रगतिवादी कवि होने के साथ-साथ एक कहानीकार, उपन्यासकार तथा आलोचक भी थे। इनके कविताओं में समाजवादी चिंतन और उससे अनुप्राणित सामाजिक संवेदना की शक्ति देखी जाती है। रांगेय राघव ने प्रबंधात्मक और मुक्तक दोनों प्रकार के कविताओं की रचना की है। इनके द्वारा लिखित प्रमुख काव्य-संग्रह हैं- अजेय खण्डहर (1944), मेधावी (1947), पांचाली (1955), राह का दीपक ( ), पिघलते पत्थर (1946) आदि।



अपनी प्रगति जाँचें

प्रश्न 1: केदारनाथ अग्रवाल के रचनाओं का उल्लेख करे ?

प्रश्न 2: रांगेय राघव के बारे में उल्लेख करे ?

8.4.5 शिवमंगलसिंह सुमन (1915-2002)

शिवमंगलसिंह सुमन का जन्म झगरपुर, उन्नाव में हुआ था। शिवमंगलसिंह सुमन द्वारा लिखित दो तरह की कविताएँ देखी जाती है- प्रथम जो गीत हैं या छोटी-छोटी सुगठित कविताएँ है। द्वितीय श्रेणी की कविताएँ लंबी है तथा उपदेशात्मक है। इनके द्वारा लिखित प्रमुख काव्य-संग्रह हैं- हिल्लोल (1939), जीवन के गान (1942), युग का मोल (1945), प्रलय सृजन (1950), विश्वास बढ़ता गया (1948), विध्य हिमालय (1960), वाणी की व्यथा (1980), कटे अँगूठों की वंदनवारें (1991), पर आँख नहीं भरी, हम पक्षी उन्मुक्त गगन के आदि।

8.4.6 त्रिलोचन (1917-2007)

त्रिलोचन का जन्म सन् 1917 में सुल्तानपुर में हुआ। इनका मूल नाम वासुदेव सिंह है। त्रिलोचन की कविताओं में सादगी और मिट्टी की खुशबू मिलती है। इनके द्वारा लिखित

प्रमुख काव्य-संग्रह है- धरती (1945), गुलाब और बुलबुल (1956), दिगंत (1957), ताप के ताए हुए दिन (1980), शब्द (1980), मैं उस जनपद का कवि हूँ (1981), अरघान (1984), तुम्हें सौंपता हूँ (1985), फूल नाम है एक (1985), अनकहनी भी कुछ कहनी है (1986), सब का अपना है आकाश आदि।

इन कवियों के अतिरिक्त छायावाद के कवि सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भगवती चरण वर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', माखनलाल चतुर्वेदी, तथा प्रयोगवाद के कवि मुक्तिबोध, अज्ञेय, भारत भूषण अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, शमशेरबहादुर सिंह का भी प्रगतिवादी साहित्य में उल्लेखनीय योगदान रहा है।



8.5 सारांश

प्रगतिवाद केवल काव्य प्रवृत्ति ही नहीं, यह एक व्यापक काव्य आंदोलन है। इस काव्य आंदोलन के पीछे मार्क्सवादी विचारधारा है। भारत में प्रगतिवाद या प्रगतिशील साहित्य शब्द का प्रयोग सन् 1936 में हुआ जब 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। अन्तर्वस्तु की दृष्टि से प्रगतिवाद में सामाजिक यथार्थ की दृष्टि, परिवेश के प्रति लगाव, मानवीय सम्बंधों में समानता, शोषक वर्ग के प्रति घृणा, नारी के प्रति सम्मानजनक भाव, शोषण के विरूद्ध विद्रोह को महत्व दिया गया है। प्रगतिवाद के प्रमुख कवि हैं- नार्गाजुन, त्रिलोचन, रांगेय राघव, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, शमशेर बहादुर सिंह आदि।



8.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर - केदारनाथ युग की गंगा (1947), नींद के बादल (1947), लोक और आलोक (1957), फूल नहीं रंग बोलते हैं (1965) अधिक जानने के लिए कृपया इकाई को ध्यान से पढ़ें।

प्रश्न 2 का उत्तर - रांगेय राघव का जन्म आगरा में हुआ था। उनका मूल नाम तिरुमल्लै नंबाकम वीर राघव आचार्य था, परंतु उन्होंने रांगेय राघव नाम से साहित्य की रचना की है। इकाई में इसकी चर्चा विस्तारपूर्वक किया गया है।



8.7 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
3. लक्ष्मी लाल बैरागी, हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का इतिहास, संघी प्रकाशन, जयपुर।
4. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।



8.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए –

10. 'केदारनाथ अग्रवाल' के किसी एक रचना का नाम बताएं ?
11. नार्गाजुन का वास्तविक नाम क्या है ?
12. 'राह का दीपक' किसकी रचना है ?
13. 'अनकहनी भी कुछ कहनी है' के रचनाकार कौन है ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए –

1. प्रगतिवाद क्या है ? हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद का आरम्भ कब से माना जाता है ?
2. प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ क्या है ?
3. हिंदी साहित्य में प्रगतिवादी विचारधारा का विकास कैसे हुआ ?

*** ***** ***

इकाई 9 प्रयोगवाद

इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 प्रयोगवाद से तात्पर्य

9.4 प्रयोगवाद की विशेषता

9.5 प्रयोगवाद के प्रमुख कवि और रचनाएँ

9.6 सारांश

9.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

9.8 अधिक जानने के लिए पढ़े

9.9 अभ्यास प्रश्न

9.1 उद्देश्य

इस अध्याय से आप जान सकेंगे-

- प्रयोगवाद के तात्पर्य अथवा स्वरूप के बारे में।
- प्रयोगवाद की विशेषताओं के बारे में।
- प्रयोगवाद के प्रमुख कवि और उनकी रचनाओं के बारे में।

9.2 प्रस्तावना

पाठ्यक्रम के इस इकाई से आप हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के अन्तर्गत प्रयोगवाद, प्रयोगवाद की विशेषताएँ, प्रयोगवाद के प्रमुख कवि और उनके रचनाओं के बारे में मनन करेंगे। हिन्दी में आधुनिक काल के काव्य का विकास छायावाद के उपरान्त छायावादोत्तर काव्य के रूप में हुआ जिसके अन्तर्गत प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता को समाहित किया गया है। प्रयोगवाद का प्रारंभ अज्ञेय द्वारा सम्पादित तारसप्तक से माना जाता है। इस ग्रंथ का प्रकाशन सन 1943 ई. में हुआ। इसमें सात कवियों की रचनाएँ संगृहीत है। ये सात कवि हैं- अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर, डॉ. रामविलास शर्मा। प्रयोगवादी कविता का दूसरा संग्रह दूसरे तारसप्तक के नाम से सन् 1949 में प्रकाशित हुआ था। दूसरा तारसप्तक के सात कवि हैं भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती। तीसरा और चौथा सप्तक भी प्रकाशित हुआ था। इसके अतिरिक्त कुछ प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ जैसे- प्रतीक, पाटला,

दृष्टिकोण, धर्मयुग आदि में भी प्रयोगवादी कविता का प्रकाशन होता रहा।



महत्वपूर्ण बिंदु –

धर्मयुग हिन्दी की एक लोकप्रिय साप्ताहिक पत्रिका थी जो टाईम्स ऑफ इण्डिया समूह द्वारा मुंबई से प्रकाशित होती थी। इसके सम्पादक हिन्दी के जाने–माने साहित्यकार धर्मवीर भारती थे।

9.3 प्रयोगवाद से तात्पर्य

प्रयोगवाद उन कविताओं के लिए प्रयुक्त होता है जो कुछ नये भावबोध, नये संवेदनाओं और नये शिल्पगत विशेषताओं के साथ 1943 में अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तारसप्तक' के साथ प्रकाशन में आयी। यह प्रयोगवाद प्रगतिशील कविताओं के साथ विकसित होती है। आरम्भ में अज्ञेय ने तारसप्तक के सात कवियों को नये कवियों के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया और उसे प्रयोगवाद की संज्ञा से अभिहीत किया।

कुछ लोग प्रयोगवाद को रूपवाद अर्थात फार्मलिज्म का पर्यायवाची मानते है। उनके अनुसार प्रयोगवाद यूरोपीय साहित्य का जुठन है। इस काव्यधारा पर फ्रायड, इलियट तथा पाउण्ड का स्पष्ट प्रभाव माना हैं। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने प्रयोगवाद पर पाश्चात्य साहित्य के प्रतीकवाद, बिम्बवाद, अतियर्थाथवाद, अस्तित्ववाद तथा फ्रायड के कुण्ठावाद का प्रभाव माना है।

प्रयोगवादी कवियों ने कविता में प्राचीन परम्पराओं से हटकर कुछ नवीन प्रयोग किया। प्रयोगवादी कवियों नें काव्य के कला एवं भावपक्ष में नवीन प्रयोग करके हिन्दी साहित्य में नया युग लाया। प्रयोगवादी कवियों ने परम्पराओं का विरोध नहीं किया बल्कि परम्पराओं से आयी हुई रुढ़ तत्व को त्यागकर नए तत्व या भावधारा का काव्य में प्रयोग किया। अज्ञेय ने इन कवियों को 'राहों के अन्वेषी' कहा। ये किसी मंजिल पर पहुंचे हुए नहीं हैं, बल्कि पथ के अन्वेषक है। तारसप्तक की भूमिका में अज्ञेय ने इस संदर्भ में लिखा है– प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किये हैं, यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है, किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी छुआ नहीं गया था, जिनको अभेद्य मान लिया गया है। प्रयोगवाद ने साहित्य में पहली बार व्यक्ति अस्मिता और निजता को महत्व दिया। प्रयोगवाद के संबध में श्री रामेश्वर शर्मा ने कहा है प्राचीन रूढ़ियों और संस्कारों से जब मनुष्य ऊब जाता है तब वह नवीनता की ओर उन्मुख होता है। जीवन और जगत के सौन्दर्य के मानदण्डों के समान साहित्य–सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के मानदण्ड भी बदलते रहते हैं। नयी कविता से पहले की

हिन्दी कविता रूढ़िबद्ध और परम्पराग्रस्त हो चुकी थी। पुरानी कविता समाज के साथ कदम से कदम मिलाकर नहीं चल रही थी, परिणामत: उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए नयी कविता का उद्भव हुआ। पुरानी कविता नये भावों के अभिव्यंजन के लिए सक्षम थी, अत: नयी कविता को शैली–क्षेत्र में नवीन प्रयोग करने पड़े। सारांश रूप में कहा जा सकता है कि प्रयोगवाद या नयी कविता का जन्म नवीन वस्तु और नवीन शैली के आग्रह के फलस्वरूप हुआ, अत: इसमें नवीन उपमानों और नवीन प्रतीकों का ग्रहण हुआ।

9.4 प्रयोगवाद की विशेषताएँ

तार सप्तक में संगृहीत कविताओं से यह स्पष्ट है कि तार सप्तक के सभी कवियों के अनुभव के क्षेत्र, कथ्य और दृष्टिकोण में विविधता है। उनके इन विचार और कथ्य की विविधता को हम कविताओं के माध्यम से देख सकते है। प्रयोगवादी कुछ कवि ऐसे हैं जो विचारों से तो समाजवादी है लेकिन संस्कारों से व्यक्तिवादी। इनमें से शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता और नेमिचंद्र जैन प्रमुख हैं। रामविलाश शर्मा और गजानन माधव मुक्तिबोध जैसे कवि विचार और क्रिया दोनों दृष्टियों से समाजवादी है। कुछ कवि ऐसे भी है जो जीवन मूल्यों और सामाजिक प्रश्नों को असत्य मानकर अपने व्यक्तिगत जीवन की संवेदनाओं को ही कविता में रूपायित करना चाहते है। प्राय: ये सभी कवि मध्यवर्गीय है। प्रयोगवादी कविता में ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय समाज का चित्रण मिलता है।

प्रयोगवादी कवि घोर व्यक्तिवादी है। वह अपनी काव्य में समाज की उपेक्षा करता है। प्रयोगवादी कवि अपने तक सीमित रहकर घोर अहंवादी बन गया है। स्वकेन्द्रित भावों की अभिव्यक्ति प्रयोगवादी कविताओं में मिलती है।

प्रयोगवादी कविता में नग्न यर्थाथवाद के चित्र देखने में आते है। नग्न यर्थाथवाद के कारण बहुत से कवियों अपनी कविताओं में भदेस और अश्लील प्रयोग किये हैं। अज्ञेय की कविता में भी भद्देसपन मिलता है।

प्रयोगवादी कवि की कविता में अति बौद्धिकता मिलता है। भावना के स्थान पर प्रयोगवादी कविता में कवि विचार को प्रस्तुत करता है। प्रयोगवादी कविता में अति बौद्धिकता के कारण भावना दब गई है। इस सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र ने कहा है एक गहन बौद्धिकता इन कविताओं पर सीसे के पर्त की तरह जम जाती है।

प्रयोगवादी कविता में क्षणवाद पर अधिक महत्व दिया गया है। प्रयोगवादी कवि यह मानता है कि जो क्षण हम भोग रहे है उसी क्षण का मूल्य है। क्षणवाद की प्रवृत्ति अस्तित्ववाद का देन है जिसका प्रभाव प्रयोगवादी कवियों की काव्य में भी देखने को मिलता है। क्षण के प्रति आस्था गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती आदि प्रयोगवादी कवियों के कविताओं में भी मिलती है। प्रयोगवादी कवि अज्ञेय ने भी क्षण के महत्व को अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त किया है–

एक क्षण –क्षण में प्रवाहमान

व्याप्त सम्पूर्णता।
इससे कदापि बड़ा नहीं था महाबुद्धि जो
पिया था अगस्त्य ने।

रूढ़ि का विरोध और नवीनता के प्रति मोह प्रयोगवादी कविता की एक प्रमुख विशेषता है। प्रयोगवादी कवि परम्परा में विश्वास नहीं रखते। भारतीय परम्परा का प्रयोगवादी कविता में स्थान नहीं है। नवीनता के प्रति मोह के कारण प्रयोगवादी कवियों ने अभिव्यक्ति के ढंग में भी नवीनता लाने का प्रयास किया। अज्ञेय ने भी अपनी प्रेयसी की सुन्दरता को प्रकट करने के लिए नई उपमाएँ प्रयुक्त किए है। उनकी कविता 'कलगी बाजरे' की इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है जिसमें उन्होंने अपनी प्रेयसी की तुलना बाजरे की कलगी से की है।

श्रृंगार और प्रेम की सहज अभिव्यक्ति अनेक प्रयोगवादी कविताओं में सफलतापूर्वक किया गया है। प्रयोगवादी कविता में श्रृंगार और प्रेम के साथ काम भावना की अभिव्यक्ति भी हुई है। गिरिजाकुमार माथुर का चुढ़ी का टुकरा श्रृंगार और प्रेम भावना की कविता का अच्छा उदाहरण है।

प्रयोगवादी कविताओं में नये धंग का प्राकृतिक वर्णन देखने को मिलती है। प्रयोगवादी कवि ने नगरों के जीवन को अपने काव्य में अधिक लिया है। लेकिन प्रकृति की नैसर्गिक सत्ता हम गाँवों के जीवन में ही प्रकृत रूप से देख सकते है। इस दृष्टि से गिरिजाकुमार माथुर की कुछ कविताओं में प्रकृति की नैसर्गिक स्वरूप देखने को मिलती है। उनकी मंजीर, नाश और निर्माण, धूप के धान, शिलापंख चमकीले, जो बँध नहीं सका, भीतरी नदी की यात्रा, छाया मत छूना, साक्षी रहे वर्तमान, पृथ्वीकल्प, कल्पांतर, मैं वक्त के हूँ सामने, मुझे और अभी कहना है, आदि काव्य में प्रकृति का चित्रण मिलता है। प्रकृति वर्णन अज्ञेय की कविता में भी मिलता है, लेकिन अज्ञेय प्रकृति में कुछ इस प्रकार की वस्तु खोजते है, जो उनके कथ्य को परम्परा से अलग कर दे। सुबह की प्रकृति वर्णन में कवि प्रकृति की अन्य चीजों से कुछ अधिक महत्व देते है। प्रयोगवाद के अधिकांश कवि परम्परा से हटके कुछ नये ढंग के प्रकृति चित्रण करने के कारण विलायती पैड़-पौधे के प्रति भी अधिक आकर्षित हो जाते है। कैकटास के पौधा प्रयोगवादी कवि को अधिक भाता है। प्रयोगवादी कवि इसे उपमान के रूप में भी प्रयोग करते है। प्रयोगवादी कवि प्रकृति की उपेक्षा भी नहीं की। भवानीप्रसाद मिश्र ने सतपुड़ा के जगंल नामक कविता में जंगल के प्राकृतिक सूषमा को बड़े ही सुन्दर धंग से वर्णन किया है –

''झाँड़ उँचे और नीचे चुप खड़े है आँख मीचे
घास चुप है, कास चुप है, मुक लाल पलाश चुप है।
बन सके तो धँसों इनमें, धँस न पाती हवा जिनमें।''

9.5 प्रयोगवाद के प्रमुख कवि और रचनाएँ

सचिदानन्द हीरानन्द वात्सायन 'अज्ञेय'– अज्ञेय प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रवर्तक कवि

है। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के कसया (देवरिया) में 1911 में हुआ था। अज्ञेय कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार एवं आलोचक के रूप हिन्दी साहित्य जगत में प्रसिद्ध है। बी.एस-सी तक शिक्षा पाने के बाद इन्होंने अंग्रेजी और हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत का भी अध्ययन किया। अज्ञेय का जीवन क्रांतिकारी और यायावरी रहा है। अंग्रेजी में एम.ए की शिक्षा प्राप्त करते समय क्रांतिकारी आन्दोलन से भी जुड़ गये थे। उन्होंने 1930 से 1936 तक जेल जीवन भी व्यतित किए। सन् 1943 से 1946 तक इन्होंने सेना में नौकरी की। कुछ दिनों तक ये जोधपुर विश्वविद्यालय में भी कार्य करते थे। प्रयोगवादी काव्य को प्रतिष्ठित करने में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी इन्हें काफी ख्याति प्राप्त हुई। इन्होंने सैनिक, विशाल भारत, प्रतीक, दिनमान, नवभारत टाइम्स, वाक जैसी प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया। तार सप्तक, दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक, चौथा सप्तक और रूपांबरा अज्ञेय द्वारा संपादिक काव्य संकलन हैं। 1964 में उन्हें आँगन के पार द्वार नामक काव्य संग्रह पर साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था और 1978 में कितनी नावों में कितनी बार पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ।

अज्ञेय की प्रमुख रचनाएँ -

काव्य संग्रह - भग्नदूत (1933), चिन्ता(1942), इत्यलम (1946), हरी घास पर क्षण भर (1949), बावरा अहेरी (1954), इन्द्रधनुष रौंदे हुए थे (1957), अरी ओ करुणा प्रभामय (1959), आँगन के पार द्वार (1961), कितनी नावों में कितनी बार (1967), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1970), सागर मुद्रा (1970), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1947), महावृक्ष के नीचे (1977), नदी की बाँक पर छाया (1981) ।

कहानी संग्रह - विपथगा (1937), परम्परा (1944), कोठरी की बात (1945), शरणार्थी (1948), जयदोल (1951)।

उपन्यास - शेखर एक जीवनी (प्रथम भाग,1941), शेखर एक जीवनी (द्वितीय भाग, 1944), नदी के द्वीप (1951), अपने अपने अजनबी (1961)

यात्रा वृतांत -अरे यायावर रहेगा याद (1953), एक बूँद सहसा उछली (1960)

आलोचना - त्रिशंकु (1945), आत्मनेपद (1960), भवन्ती(1971), अद्यतन (1971)

गजानन माधव मुक्तिबोध - मुक्तिबोध का जन्म 1917 में मध्यप्रदेश के ग्वालियर के एक कस्बे में हुआ था। ये हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि, आलोचक, कथाकार, पत्रकार, विचारक और समीक्षक है। इन्होंने एम.ए. तक की शिक्षा प्राप्त की। मुक्तिबोध का सामाजिक अनुभव उनकी काव्य की मूल शक्ति है। उनकी कविता में मनुष्य की अस्मिता, जीवन और समाज में व्याप्त विसंगति, अराजकता आदि का स्वर मिलता है। उनकी कविता पहली बार तार सप्तक के माध्यम से सामने आई। उनकी कोई स्वतंत्र काव्य संग्रह उनके जीवित काल में प्रकाशित नहीं हुआ। इन्होंने अपनी कविता में जीवन की कटुता, संत्रास को अनुठे ढंग से व्यक्त किया है। उनकी काव्य कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने मानव जीवन की जटिल संवेदनाओं और उसके अंतर्द्वन्द्वों की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति के लिए फैन्टेसियों

का कलात्मक उपयोग किया, जिसे मुक्तिबोध के काव्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि कहा जा सकता है। अंधेरे में, ब्रह्मराक्षस कविता इसका उदाहरण है। इनकी 'ब्रह्मराक्षस' कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है –

शोध में

सब पंडितों सब चिंतकों के पास

वह गुरु प्राप्त करने के लिए भटका।

गजानन माधव मुक्तिबोध की प्रमुख रचनाएँ – चाँद का मुँह टेढ़ा है (कविता संग्रह, 1964), नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध (निबंध संग्रह, 1964), एक साहित्यिक की डायरी (निबंध संग्रह,1964), काठ का सपना (कहानी संग्रह, 1967), विपात्र (उपन्यास ,1970), नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (1971), सतह से उठता आदमी (कहानी संग्रह, 1971), कामायनी : एक पुनर्विचार (कहानी संग्रह, 1973), भूरी-भूरी खाक धूल (कविता संग्रह, 1980), मुक्तिबोध रचनावली (नेमिचंद्र जैन द्वारा सम्पादित, 1980), समीक्षा की समस्याएँ (1982)।

गिरिजाकुमार माथुर – प्रयोगवादी कवियों में गिरिजाकुमार माथुर प्रसिद्ध है। उनका जन्म 1919 में मध्यप्रदेश के अशोक नगर में हुआ था। इन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम.ए. किया तथा एल.एल.बी. की परीक्षा भी पास की। इन्होंने फिर प्रारंभ में वकालत और दिल्ली सेक्रटेरिएट में कार्यरत रहे। 1943 से आकाशवाणी के अनेक महत्वपूर्ण पदों पर कार्यरत रहे। गिरिजाकुमार माथुर दूरदर्शन के उपमहानिदेशक के पद से सेवानिवृत हुए । गिरिजाकुमार माथुर कवि, नाटककार और समालोचक थे। उन्होंने गगनांचल नामक साहित्यक पत्रिका का सम्पादन भी किया। 1991 में उनकी कविता संग्रह मैं वक्त के हूँ सामने के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा इसी काव्य संग्रह के लिए 1993 में व्यास सम्मान प्राप्त हुआ।

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य का प्रमुख विषय प्रेम और विरह है। साथ ही प्रकृति वर्णन, राष्ट्रीयता, मानवीकरण, नये उपमान आदि अनेक स्वर इनकी कविता से मिलती है। इनकी बड़ा काजल आँजा है आज, चूड़ी का टुकड़ा, पन्द्रह अगस्त 1947 आदि प्रसिद्ध कविताएँ हैं। प्रेम और सौन्दर्य को व्यक्त करने वाली इनकी कविता बड़ा काजल आँजा है आज की कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत है–

बड़ा काजल आजा है आज

भरी आँखों में हल्की लाज

तुम्हारे ही महलों में प्रात

जला क्या दीपक सारी रात ।

गिरिजाकुमार माथुर की प्रमुख रचनाएँ–

काव्य संग्रह – मंजीर, नाश और निर्माण, धूप के धान, शीलापंख चमकीले , जो बँध नहीं सका, भीतरी नदी की यात्रा, छाया मत छूना, साक्षी रहे वर्तमान, पृथ्वीकल्प, कल्पांतर, मैं वक्त के हूँ सामने, मुझे और अभी कहना है

आलोचना – नयी कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ

धर्मवीर भारती – धर्मवीर भारती का जन्म 1926 में उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद में हुआ। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी धर्मवीर भारती एक साथ हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि, नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार, सामाजिक विचारक और स्वतंत्रता सेनानी थे। वे हिन्दी में एम.ए., पी.एच.डी. थे। प्रारंभ में इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक के रूप में कार्यरत रहे। 1987 तक प्रख्यात साप्ताहिक पत्रिका धर्मयुग के संपादक रहे। डॉ. धर्मवीर भारती को 1972 में पद्मश्री सम्मान से सम्मानित किया गया। उनका उपन्यास गुनाहों का देवता बहुत ही प्रसिद्ध रचना मानी जाती है। ठंडा लोहा और अंधा युग भी प्रसिद्ध रचना है। अंधा युग में उन्होंने सांस्कृतिक क्रांति उत्पन्न करने का प्रयास किया है। इनकी बहुत सी कविताएँ प्रेममूलक है। मानव प्रेम को व्यक्त करने में इनकी आस्था है। कुछ व्यंग्यात्मक कविताएँ भी है, जिसके माध्यम से इन्होंने सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा राजनैतिक विसंगतियों पर चोट करती हैं। इन्होंने बड़ी कलात्मकता के साथ मानवीकरण अलंकार का प्रयोग करते हुए प्रकृति चित्रण को प्रस्तुत किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

शाम–
एक सफर में थकी हुई लड़की सी
आई और मेरे पास बैठ गई
बैठी रही गुम–सुम
धीमे से उठी
और कसे हुए अंग ठोल कर
उतर गई ।

धर्मवीर भारती की प्रमुख रचनाएँ–

काव्य संग्रह – ठंडा लोहा (1952), सात गीत (1959), कनुप्रिया(1959), सपना अभी भी (1993), आद्यन्त (1999), देशांतर(1960) ।

कहानी संग्रह – मुर्दों का गाँव(1946), स्वर्ग और पृथ्वी (1949), चाँद और टूटे हुए लोग (1955), बंद गली का आखिरी मकान(1969), साँस की कलम से।

उपन्यास – गुनाहों का देवता (1949), सूरज का सातवां घोड़ा (1952), ग्यारह सपनों का देश, प्रारंभ और समापन।

निबंध संग्रह – ठेले पर हिमालय (1958), पश्यन्ती (1969), कहनी–अनकहनी (1970), कुछ चेहरे कुछ चिन्तन(1995), शब्दिता (1977), मानव मूल्य और साहित्य (1960)।

एकांकी व पद्य नाटक – नदी प्यासी थी,नीली झील, आवाज का नीलाम, अंधा युग (1954)

आलोचना – प्रगतिवाद : एक समीक्षा, मानव मूल्य और साहित्य।

भवानीप्रसाद मिश्र – भवानीप्रसाद मिश्र का जन्म 1914 में मध्यप्रदेश के होशंगावाद

जिला में हुआ था। 1934-1935 में इन्होंने अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत विषय लेकर बी.ए की शिक्षा प्राप्त की। बी.ए. की शिक्षा प्राप्त करने के बाद ये हैदराबाद से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका कल्पना के संपादक रहे। उसके बाद ऑल इंडिया रेडियो में नौकरी की। भवानीप्रसाद मिश्र गांधी दर्शन से प्रभावित थे। उनकी कविताओं में विविध स्वरों के साथ गांधी चिन्तन का स्वर भी देखने को मिलता है। उन्होंने दार्शनिक सिद्धान्तों और मानव मूल्यों को लोक भाषा में जन-जन तक पहुचाने में सफलता प्राप्त की है। उनकी भाषा और अभिव्यक्ति में लोक जीवन की प्रधानता है। भवानीप्रसाद मिश्र सहज संवेदना के कवि है। उनकी संवेदना कही अत्यंत सूक्ष्म और आत्मगत है, तो कही अत्यंत प्रत्यक्ष और परिवेश संपृक्त है।

भवानीप्रसाद मिश्र की प्रमुख रचनाएँ -

काव्य संग्रह : गीत फरोश, चकित है दु:ख, गांधी पंचशती, बुनी हुई रस्सी, खुशबू के शिलालेख, त्रिकाल संध्या, अँधेरी कविताएँ, शतदल कविताएँ, त्रिकाल संध्या, अनाम तुम आते हो, फसलें और फूल, मानसरोवर दिन, नीली रेखा तक, सन्नाटा।

संस्मरण- जिन्होंने मुझे रचा।

निबंध संग्रह - कुछ नीति कुछ राजनीति।

शमशेरबहादुर सिंह - शमशेरबहादुर सिंह का जन्म 1911 में देहरादून में हुआ। बी.ए. की शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने कहानी और नया साहित्य के संपादक मंडल में रहे। शमशेर ने कविता, निबंध, कहानी एवं डायरी विधा में लेखन कार्य किया। साथ ही अनुवाद कार्य में भी जुड़े थे। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय में विश्वविद्यालय अनुदान की एक महत्वपूर्ण परियोजना उर्दू-हिन्दी-कोश का संपादन कार्य भी किया। चुका भी हूँ नहीं मैं काव्य संग्रह के लिए उन्हें 1977 में साहित्य अकाडमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

शमशेरबहादुर सिंह की प्रमुख रचनाएँ -

कविता संग्रह -कुछ कविताएँ (1959), कुछ और कविताएँ (1961), चुका भी हूँ नहीं मैं (1974), इतने पास अपने (1980), उदिता: अभिव्यक्ति का संघर्ष (1980), बात बोलेगी (1981), काल तुझसे होड़ है मेरी (1988), कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ (1994), सुकून की तलाश में (1998)।

गद्य रचनाएँ- दो आब (निंबध संग्रह, 1948), प्लाट का मोर्चा (कहानी संग्रह. 1952), कुछ गद्य रचनाएँ (संपादक - मलयज एवं रंजना अरगड़े), कुछ और गद्य रचनाएँ (संपादक- रंजना अरगड़े)।

अनुवाद कार्य - पृथ्वी और आकाश (1944), षडयंत्र (1946), कामिनी (1948), हुश्शू (1948), पी कहाँ (1948), उर्दू साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (1956), आश्चर्यलोक में एलिस (1961)।

रचना समग्र- शमशेर बहादुर सिंह रचनावली (2017)।

रघुवीर सहाय- रघुवीर सहाय का जन्म 1929 में लखनऊ में हुआ था। उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. उत्तीर्ण की। रघुवीर सहाय पहले

'प्रतीक', 'वाक' और 'कल्पना' के संपादक मंडल में रहे । 1946 से साहित्य सृजन में जुड़ गये । 1943 से 1947 तक आकाशवाणी के समाचार विभाग में उपसंपादक रहे। उन्होंने नवभारत टाइम्स के विशेष संवाददाता के रूप में भी कुछ देर के लिए काम किया। इनकी कविताओं का संकलन दूसरे सप्तक में किया गया था। सामाजिक यथार्थ के प्रति इनके काव्य में विशेष सजगता देखी जा सकती है। 'लोग भूल गए हैं' नामक काव्य संग्रह के लिए 1984 में साहित्य अकाडमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

रघुवीर सहाय की प्रमुख रचनाएँ- सीढ़ियों पर धूप में (काव्य संग्रह), आत्महत्या के विरुद्ध (काव्य संग्रह), हँसो हँसो जल्दी हँसो (काव्य संग्रह), रास्ता इधर से है (कहानी संग्रह), दिल्ली मेरा परदेश और लिखने का कारण (निबंध संग्रह)।



अपनी प्रगति जाँचें

प्रश्न 1 - प्रयोगवाद से आप क्या समझते है?

प्रश्न 2 - आलोचना-नयी कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ के बारे में उल्लेख करे?



9.6 सारांश

प्रस्तुत अध्याय से हमने हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के अन्तर्गत प्रयोगवाद के बारे में जानकारी प्राप्त की। प्रयोगवाद प्राचीनता से नवीनता की ओर आगे बढ़ता है। नवीनता अर्थात उसमें नई शैली में नई विषयों का अभिव्यक्ति किया गया। प्रयोगवादी कवियों को नवीन अभिव्यक्ति के लिए नये माध्यम और विषय चुनने पड़े। प्रयोगवादी कवियों का लक्ष्य परम्पराओं का विरोध करना नहीं है, बल्कि परम्परा से आयी हुई रूढ़ तत्व के स्थान पर नये सजीव तत्व का अन्वेषण करना है। बदलते हुए समाज के सत्य और मूल्यों को उद्घाटित करने के लिए नयी अभिव्यंजना शैली का प्रयोग, जीवन और जगत को नई दृष्टि से देखना और उन्हें नये अभिव्यंजना शैली द्वारा अभिव्यक्ति देना प्रयोगवादी काव्य का लक्ष्य है।



9.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर - प्रयोगवाद दार्शनिक विश्वास है कि सत्य का मार्ग प्रयोगों और अनुभववाद के माध्यम से है। यह साधनवाद से भी जुड़ा हुआ है, यह विश्वास कि सत्य का

मूल्यांकन उसकी प्रदर्शित उपयोगिता के आधार पर किया जाना चाहिए। अधिक जानने के लिए कृपया इकाई के अंदर देखें।

प्रश्न 2 का उत्तर – नयी कविता हिन्दी साहित्य में सन् 1951 के बाद की उन कविताओं को कहा गया, जिनमें परंपरागत कविता से आगे नये भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नये मूल्यों और नये शिल्प-विधान का अन्वेषण किया गया। इकाई में इसकी चर्चा विस्तारपूर्वक किया गया है।



9.8 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. डॉ. नगेन्द्र , हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनेल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. गणपतिचंद्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।



9.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए –

14. 'दूसरे सप्तक' के किसी एक कवि का नाम बताएं ?
15. अज्ञेय की प्रमुख रचनाओं के नाम बताएं ?
16. 'गुनाहों का देवता' (1949) किसकी रचना है ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए –

1. प्रयोगवाद के प्रमुख कवियों का परिचय दीजिए।
2. प्रयोगवादी काव्यधारा की सामान्य विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
3. प्रयोगवादी काव्यधारा का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 10 नयी कविता

इकाई की रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएँ

10.4 सारांश

10.5 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

10.6 अधिक जानने के लिए पढ़े

10.7 अभ्यास प्रश्न

10.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- नयी कविता के उदय की पृष्ठभूमि के बारे में जानेंगे।
- नयी कविता की प्रवृतियाँ और विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- नयी कविता के कवि और उनके रचनाओं को समझ सकेंगे।

10.2 प्रस्तावना

नयी कविता भारतीय स्वतंत्रता के बाद की लिखी गयी उन कविताओं का नाम है जो अपनी वस्तु-चित्र और रूप दोनों में पूर्ववती कविता- छायावाद, प्रगतिवाद, एवं प्रयोगवाद से भिन्न है। जहाँ; अनेक प्रकार की कविताओं का बोध होता है। 'नयी कविता' नामक संकल जब 1954 में प्रकाशित हुआ तब नयी कविता प्रयोगवाद से भिन्न होकर, एक रूढ़ अर्थ में प्रयोग होने लगा। प्रयोगवाद, अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद आदि प्रवृतियों से टकराकर नयी कविता 'तार सप्तक' के माध्यम से कुछ नया रंग लाकर सामने आया।

सन् 1954 में प्रयोगवादी नाम से जो असंतुष्टता की व्यक्त की गयी उसी का परिणाम नयी कविता है। डॉ. जगदीश गुप्त और डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के संपादकत्व में 'नयी कविता' नामक एक अर्धवार्षिक काव्य-संग्रह प्रकाशित होने लगा था। इसी से नयी कविता नाम प्रचलन हो गया। नयी कविता प्रयोगवादी कविता का नया संस्कार है। कुछ लोग प्रयोगवादी और नयी कविता की धारा को एक मानते हुए प्रयोगवाद को बाल्यावस्था तथा नयी कविता को इसका विकसित पड़ाव स्वीकार करते है। नयी कविता नाम में एक तरह से भ्रम की स्थिति पैदा होती है। क्योंकि प्रत्येक पड़ाव और परिस्थिति में कविता अपने पहले युग की तुलना में नयी ही होता है। नयी कविता के इतिहास के सन्दर्भ में रामविलास शर्मा अपनी एक पुस्तक की भूमिका में लिखते है- नयी कविता का इतिहास प्रगतिशील

कविता के इतिहास से जुड़ा हुआ है, इस तरह जुड़ा हुआ है कि कभी-कभी विद्वानों को दोनों में कोई फर्क नहीं दिखाई देता।

नयी कविता में भी प्राय: वही कवि है जो प्रयोगवादी कविता के थे। किन्तु उनके जीवन एवं काव्य-विषयक दृष्टिकोण में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। असल में नयी कविता स्वाधीनता के बाद लिखी गयी वह कविता है, जिसमें नवीन मूल्य, अनुभूति तथा नया शिल्प विधान को प्रमुखता दी गयी हो।

10.3 नयी कविता की प्रमुख प्रवृतियाँ एवं विशेषताएँ

नयी कविता में जीवन-जगत से संबंधित कोई भी स्थिति, भाव अथवा विचार त्याज्य नहीं है। इन सभी विषय को समाहित कर नयी कविता अपने कथ्य को उसी रूप में प्रस्तुत करता है, जिस रूप में वे अनुभूत है। हिंदी साहित्य में नयी कविता परम्परागत कविता से आगे निकालकर नए भावबोध, नये मूल्यों एवं नये शिल्प-संवेदना के साथ एक नवीन धारा बनकर प्रकाश में आई है। नयी कविता के प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित रूप में देखे जा सकते हैं-

10.3.1 राजनैतिक एवं राष्ट्रीय चेतना

राजनैतिक और राष्ट्रीय चेतना दो अलग-अलग पहलू है। मगर दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए है। नयी कविता में उल्लेखित दोनों स्वर विद्यमान है। यद्यपि यह दोनों स्वर भारतेंदु के समय से पितृ ऋण के रूप में प्राप्त हुए है। राष्ट्रीय चेतना की एक झलक निम्नलिखित कविता की पंक्ति में प्रस्तुत हैं-

फट जा आज धरित्री ! मेरी
दुस्सह लज्जा आज मिटा दे
रक्त स्थान वह मेरी साकी
मेरी दुनिया भारत माँ है।

10.3.2 घोर वैयक्तिकता

नयी कविता का प्रमुख विषय निजी मान्यताओं, विचारों एवं अनुभूतियों का प्रकाशन करना है। नयी कविता अहम् के भाव से जकड़ी हुई है। वह आत्म-ज्ञापन का घोर समर्थक है।

कि अपनी पहचान से अलग
हम और कुछ नहीं हैं
और अगर हैं तो
हमारे लिए उसका कोई अर्थ नहीं है।

यहाँ कवि की भावों की तीव्रता और अतिव्यक्तिवादिता सोच ने ही ऐसी स्थिति का उत्पन्न किया है।

10.3.3 तनाव और वेदना का स्वर

नयी कविता आधुनिक भावों को लेकर चलती है। शहरीकरण और यंत्रवाद के कारण उत्पन्न जीवन की जटिलता, तनाव और वेदना का लोगों में होना स्वाभाविक है। ये वेदनाएँ अर्जित होने के कारण अधिक सकारात्मक हैं और यह भावों से नहीं विचारों से उत्पन्न होती हैं। नयी कविता जीवन के बहुस्तरीय चित्रण में संवेदनात्मक द्वंद्व को प्रकाश में लाती है।

मुक्तिबोध की कविता 'ब्रह्मराक्षस' इसी प्रक्रिया को चयन करती है। यह अनुभव मुक्तिबोध की कविता में सहज ही देख सकते हैं –

पिस गया वह भीतरी
औ' बाहरी दो कठिन पाटों बीच,
ऐसी ट्रेजडी है नीच !

10.3.4 आशा और विश्वास का स्वर

नयी कविता में मनुष्य की असहायपन, विवशता, अकेलापन, मानवीय-मूल्यों का विघटन, सामाजिक विषमताओं तथा युद्ध के भयंकर परिणामों का चित्रण है। इसमें कवि के निराश मन का स्वर उत्पन्न हो उठता है। श्रीकांत वर्मा का निराशापन इस हद तक बड़ गया कि उन्होंने 'मायादर्पण' में–

न मैं आत्महत्या
कर सकता हूँ
न औरों का

खून !.. इस तरह से कह दिया। नयी कविता में निराशा, अनास्था, और अविश्वास के साथ-साथ आशा और विश्वास का स्वर भी मुखर हो उठा है। वस्तुत: प्रारंभ में इन कवियों में घोर निराशा दिखाई देती है। फिर निराशा के बीच आशा के लिए नयी कवि लोगों को आवाज उठाने के लिए प्रेरणा देती है। एकजुट होकर अन्याय के खिलाफ, राक्षसों के खिलाफ, बुराई के खिलाफ लड़ने के लिए प्रेरित करती है। 'बात बोलोगी' नामक कविता में शमशेर बहादुर सिंह लिखते है–

दैन्य दानव। क्रूर स्थिति।
कंगाल बुद्धि; मजूर घर-भर।
एक जनता का – अमर वर;
एकता का स्वर,

अन्यथा स्वातन्त्र्य इति।

निरशा के बाद भी नयी कविता के कवि आशा और विश्वास से परिपूर्ण है।

10.3.5 नयी कविता में निहित व्यंग

नयी कविताएँ कवियों के आज के युग की विषमताओं पर व्यंग है। व्यंग्यात्मक शैली में जीवन और सभ्यता के चित्रण में कवि को अद्भुत सफलता भी मिली है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता 'लिपटा रजाई में' में कविता और जीवन के द्वैत की व्यंग्यपूर्ण चर्चा नजर आये है जहाँ, कवि ने तथाकथित अलगाव को व्यंग्यपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया है। अज्ञेय की कविता 'साँप' कविता नगरी सभ्यता पर तीक्ष्ण कटाक्ष है–

साँप!
तुम सभ्य तो हुए नहीं।
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूं ? (उत्तर दोगे ?)
फिर कैसे सिखा डँसना
विष कहाँ पाया ?

10.3.6 अति बौद्धिकता

नयी कविता में अनुभव करने की योग्यता कुछ हद तक कम है अर्थात उसमें क्रियात्मक रूप को अधिक प्रकट नहीं किया गया है। नयी कविता हृदय–पक्ष को प्रकट न करके केवल बुद्धि–पक्ष को ही अधिक प्रमुखता दिए है। नयी कविता के कवि अपनी बुद्धि से समस्याओं पर गंभीर चिंता व्यक्त किए है, और अपनी समस्याओं का समाधान भी बौद्धिक धरातल पर खोजती रहती है।

चंबल की घाटी के टीले पर एक महकाया दस्यु बसता है– काला, मोटा, नाता, जंगली। तिला है मनुष्य का मन और उस पर बसा हुआ डाकू है शैतान। हवा टीले को यही ज्ञान देता है कि उसकी छाती पर जो डाकू की चट्टानी सूरत बनी हुई है, वह असल में है क्या अथवा किसकी आकृति हैं? प्रकृतार्थ में शेतान मनुष्य के बाहर का चीज नहीं है, शेतान मनुष्य के भीतर ही होता है, मनुष्य में पाप करने की इच्छा ही शैतान का रूप है।

अज्ञेय पर फ्रायड के मनोविज्ञान का विशेष प्रभाव रहा है। जिसके कारण उनके कविताओं में संवेदनशीलता और अतिरिक्त बौद्धिकता का विशेष गुण नजर आते है, जिसके कारण उनके कुछ कविता दुरूह और निरीह हो गयी हैं। अतिबौद्धिकता का एक उदहारण प्रस्तुत है–

इसीलिए मैं हर गली में
और हर सढ़क पर

झाँक-झाँक देखता हूँ हर एक चेहरा
प्रत्येक गतिविधि,
प्रत्येक चरित्र,
वह हर एक आत्मा का इतिहास,
हर एक देश व राजनैतिक परिस्थिति
प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत आदर्श
विवेक-प्रक्रिया क्रियागत परिणति !!
खोजता हूँ पठार.... पहा ?.... समुन्दर
जहाँ मिल सके मुझे
मेरी वह खोई हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार
आत्म-संभवा ।

10.3.7 क्षण का महत्व

नई कविता का कवि क्षण विशेष की अनुभूति को विशेष महत्व देता है। उनके लिए सुख का एक क्षण सम्पूर्ण जीवन से अधिक महत्वपूर्ण है। वह क्षण में ही जीवन की सम्पूर्णता के दर्शन करता है। क्षण विशेष में अनुभूति होनेवाला जीवन-सौंदर्य उनके लिए एकमात्र सत्य है। एक उदहारण प्रस्तुत है-

यह विकल क्षण जन्म के आतुर
उचित ताम खोजता
रक्ताभ कोरक के विनश्वर गर्भ में...

10.3.8 कल्पना की अतिशयता

नयी कविता के कवि कल्पना के उस दुनिया में विचरण करता है। अपने ही नगर में यह अनुभव करना कि वह अपरिचित है, मित्रों के बीच में सहसा बोध होना कि ये अजनवी हैं- न्युरोसिस के बहुत हलके-फुल्के रूप हैं, उछलना-कूदना, लेम्प पोस्टों से बातें करना ये सब कल्पना की अतिशयता है। नयी कविता के कवि इतने अधिक कल्पना करते है कि सुन्दरता में वे कुरूपता का आवरण देख पाते है। उनके अनुसार सुंदरता मृत्यु को महिमामंडित करती है। उसी शब्द में कुरूपता भी निहित है। केदारनाथ सिंह लिखते है-

फूलों से घिरा
और कविताओं से ढँका
और बढ़े-बढ़े कीमती पत्थरों से मढ़ा हुआ
एक भव्य कब्रिस्थान था
जिसे देखकर

पानी भर आता था
जीवितों के मुँह में।

10.3.9 यथार्थवादी अनुभूति

नई कविता में मनुष्य जीवन की व्यापकता को लेकर लिखी गयी कविता है। चाहे वह अनुभव क्षणमात्र का हो या पूरे जीवन का, किसी आम आदमी (लघुमानव) का हो या विशिष्ट व्यक्ति का, वह सब कविता में समाहित हो जाते है। नयी कविता में जीवन की अनुभूति या पीड़ा, कवि की वेदना, निराशा अथवा भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्त होती है। नई कविता व्यक्ति की क्षणिक अनुभूतियों को, उसकी पीड़ा को संवेदनापूर्ण तरीके से यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करते है। जैसे–

ऊँची हुई मशाल हमारी
आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया, लेकिन उसकी
छायाओं का डर है
शोषण से मृत है समाज
कमजोर हमारा घर है
किन्तु आ रही नयी जिंदगी
यह विश्वास अमर है
जन गंगा में ज्वार,
लहर तुम प्रवाहमान रहना
पहरुए, सावधान रहना !

10.3.10 भोगवाद और वासना

अस्थिरता आधुनिक प्रेम की नियति है। नयी कविता में क्षणवादी विचारधाराओं के प्रवाह ने भोगवाद को जन्म दिया है। नयी कविता में भोगवाद और वासना एक प्रमुख स्वर है। नयी कवि अध्यात्मिक दृष्टिकोणों के अभाव के कारण खाओ, पियो और मौज उड़ाओ सिद्धांत का पक्षपाती थे। इसी सिद्धांत के लिए ये लोग कभी–कभी लोक–मर्यादा का भी उल्लंघन करते है। जिससे समाज में अश्लीलता, अराजकता तथा अनैतिक वातावरण का भी उत्पन्न होता हुआ नजर आये है।

10.3.11 लघु मानव की प्रतिष्ठा

नई कविता में 'लघु मानव की प्रतिष्ठा का आशय है कि जो प्रजातंत्र शहरों, मशीनों के कारण मानव के महत्व में कमी आने से पैदा हुए हो, उसमें पुन: लघु मानव या आम आदमी को अपना उचित स्थान दिलाना, साथ ही मानव जीवन को महत्वपूर्ण मानकर उसे अर्थपूर्ण दृष्टि प्रदान करना आदि ही लघु मानव प्रतिष्ठा है। इसमें मनुष्य के जीवन की

संकीर्णता नहीं, बल्कि समग्रता को दर्शाया गया है। इसी कारण उसे अपनी लघुता से हीनता न होकर उल्टा आत्मसम्मान या आत्मगौरव का भाव ही नयी कविता में दिखाई पड़ता है–

यदि तुम्हारी माँ न माध्यम बनी होती आज
मैं न सकता देख
मैं न पाता जान
तुम्हारी यह दंतुरित मुस्कान।

10.3.12 भाषा

नयी कविता में संवेदनाओं को अभिव्यक्ति करने के लिए आम आदमी के रोजाना व्यवहित होनेवाली भाषा को अपनाया गया है। नयी कविता की भाषा प्रधानत साधारण बोलचाल की भाषा है। नयी कविता के कवियों ने भय, संत्रास, घुटन, उत्पीड़न आदि से आक्रांत होने के बावजूद भी अपनी भावनाओं को प्रकाशित करने के लिए इन्होंने नूतन अप्रस्तुत योजना, प्रभावी एवं सूक्ष्म बिंब आदि पद्धति को अपनाया है। नयी कविता के कवियों ने खड़ीबोली के आधुनिक रूप की अनेक ढंग को कवियों ने अपने अनुसार प्रयोग किए है। इन्होंने भाषा में सौंदर्य वृद्धि के लिए नवीन प्रतीक-योजना, बिंब-विधान एवं उपमानों का भी प्रयोग किया है। नयी कविता के कवि सर्वथा नवीन उपमानों से तंग आ गए थे और वैज्ञानिक उपमानों के प्रयोग पर बल देते है। अगर मुक्तिबोध की बात करे तो कहा जा सकता है उनकी कविताएँ अपेक्षाकृत नाटकीय है, जो मूलत: भावों, मनोदशाओं और निकटवर्ती परिवेशों को नवीन तरीके से चित्रण करता है। 'अँधेरे में' से एक उदहारण प्रस्तुत है–

अकस्मात्
चार का गजर कही खड़का,
मेरा दिल धड़का,
उदास मटमैला मन रूपी वाल्मीकि
चल विचल हुआ सहसा।
अज्ञेय की 'कलगी बाजरे की' शब्दों में-
बल्कि केवल यही
ये उपमान मैले हो गये हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कुँच।
कभी वासना अधिक घिसने से मुलम्मा छुट जाता है।

10.3.13 छन्द विधान

नयी कविता के कवियों ने छन्द के बंधन को स्वीकार न करके मुक्त परम्परा में ही अपना विश्वास रखा है। कविगन कही लोकगीतों के आधार पर अपने गीतों की रचना की है, कहीं

अपने क्षेत्र में नए प्रयोग से साहित्य की सृजन की है। नयी कविता आन्दोलन के समय कुछ ऐसी भी कविताएँ लिखी गयी थी जिनमें न लय है न ही गति है। अपितु पद्य की सी शुष्कता और नीरसता भी यहाँ नजर आयें है। कुछ नए कवियों ने रुबाइयों, गजलों और सॉनेट पद्धति का भी उपयोग करता हुआ अपना-अपना कलम चलाये हैं।



अपनी प्रगति जाँचें

प्रश्न 1 - नयी कविता की क्या-क्या विशेषताएँ हैं। चर्चा करे।



10.4 सारांश

नयी कविता का दौर रचनाशीलता और रचनाओं के प्रकाशन की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। जिसमें दर्द, कुंठा, निराशा, क्षणबोध, लघुमानववाद आदि का स्वर प्रमुखता से उभरा है। असल में नयी कविता जीवन के प्रति आस्था रखती है। नयी कविता मानव-नियति को लेकर उसकी विसंगतियों के प्रति जागरूक रही है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति में निरंतर जो विसंगतियां उभरी थी, सामाजिक और आर्थिक धरातल पर जो विरोधाभास आया था, उसके कारण हुए मोहभंग ने नयी कविता को जन्म दिया था। नयी कविता का आत्मसंघर्ष काव्यात्मक बनावट में सामाजिक बुनियादी मुद्दों को महत्व दिया गया है। नयी कविता आज की व्यवस्था में और उस व्यवस्था से जुड़े हुए प्रश्नों में कविता संघर्ष का मार्ग ढूंढती है। उसका धरातल भी व्यापक और विशाल है। निश्चित रूप से नयी कविता एक नयी मनःस्थिति का प्रतिबिंब मात्र है, जो मानव जाति और सृष्टि मात्र के संबंध को मूल में रखते है।



10.5 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर - नई कविता ने लोक-जीवन की अनुभूति, सौंदर्य-बोध, प्रकृत्ति और उसके प्रश्नों को एक सहज और उदार मानवीय भूमि पर ग्रहण किया। साथ ही साथ लोक-जीवन के बिंबों, प्रतीकों, शब्दों और उपमानों को लोक-जीवन के बीच से चुनकर उसने अपने को अत्यधिक संवेदनापूर्ण और सजीव बनाया। कविता के ऊपरी आयोजन नई कविता वहन नहीं कर सकती। अधिक जानने के लिए कृपया इकाई को ध्यानपूर्वक पढ़े।



10.6 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. रामविलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्ववाद, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, संस्करण 2003।
2. डॉ. अरुण कुमार, नई कविता : कथ्य एवं विमर्श।
3. रामस्वरूप चतुर्वेदी, नयी कविताएँ एक साक्ष्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, 1998।



10.7 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए –

17. 'नयी कविता' नामक संकलन कब प्रकाशित हुआ ?
18. 'अँधेरे में' रचनाकार का नाम बताएं ?
19. 'ब्रह्मराक्षस' किसकी रचना है ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए –

1. नयी कविता से आप क्या समझते हैं ? इसके पृष्ठभूमि को लेकर एक लेख प्रस्तुत कीजिए।
2. नयी कविता के कवियों में निहित संवेदनाओं को प्रस्तुत कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 11 नाटक साहित्य एवं एकांकी साहित्य

इकाई की रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 नाटक साहित्य का उद्भव एवं विकास

11.3.1 नाटक का उद्भव

11.3.2 नाटक का विकास

11.4 एकांकी साहित्य का उद्भव एवं विकास

11.4.1 एकांकी का उद्भव

11.4.2 एकांकी का विकास

11.5 सारांश

11.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

11.8 अधिक जानने के लिए पढ़े

11.9 अभ्यास प्रश्न

11.1 उद्देश्य

इस इकाई से आप –

- नाटक के उद्भव और विकास के बारे में जानेंगे।
- नाटक ने हिंदी साहित्य को किस प्रकार नया आयाम दिया है,उसके बारे में ध्यान लगा पाएंगे।
- नाटक साहित्य का उद्भव एवं विकास के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- एकांकी साहित्य के उद्भव के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।
- एकांकी साहित्य के विकास के बारे में भी जान पाएंगे।

11.2 प्रस्तावना

पाठ्यक्रम के इस इकाई में आप हिंदी साहित्य के आधुनिक दो गद्य विधाओं के बारे में जानकारी प्राप्त होगी। प्रथम गद्य विधा है–नाटक और दूसरा है–एकांकी। नाटक के माध्यम से मानव मन की जिज्ञासु प्रवृत्ति का समाधान होता है। नाटक मानव जीवन का चित्रण करता है। उसकी समस्याओं का समाधान करता है। नाटक मानव जीवन विभिन्न समस्याओं एवं भावों का अनुकरण एवं प्रस्तुत करता है।

हिंदी साहित्य क्षेत्र में एकांकी एक नवीनतम विधा है। इसका आविर्भाव 19वीं शताब्दी में हुआ है। जिस प्रकार उपन्यास के क्षेत्र में कहानी का उदय हुआ, ठीक उसी प्रकार नाटक के अंतर्गत एकांकी नामक विधा का उदय हुआ है।

अब हम इन पर विस्तार से चर्चा करेंगे–



महत्वपूर्ण बिंदु –
नाटक की उत्पत्ति वेदों में देखी जा सकती है। संवाद या वार्तालाप, नाटक का एक प्रमुख हिस्सा ऋग्वेद में पाया जाता है। यम और यमी, सरमा और पणि, पुरुरवा और उर्वशी जैसे कई संवाद ऋग्वेद में पाए जाते हैं और वे बहुत ही रोचक प्रकार के हैं।

11.3 नाटक साहित्य का उद्भव एवं विकास

11.3.1 नाटक का उद्भव

प्राचीन भारतीय दर्शन और आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान दोनों के ही अनुसार मानव मात्र की चार प्रमुख प्रवृत्तियाँ होते है। वह है- अनुकरण, आत्मविस्तार, जाति रक्षा और आत्माभिव्यक्ति। इन चारों का ही प्रस्तुतिकरण अथवा संतुष्टिकरण जिस एकमात्र साहित्यिक रूप में सर्वाधिक स्वसक्त मात्र में ही हो पाता है। वह है- नाटक, जो अपने आप में दो गुणा महत्व इसलिए भी रखता है कि यहीं एकमात्र ऐसा साहित्यिक रूप है जिसको पड़ना और सुना भी जा सकता और प्रत्यक्ष देखा भी जा सकता है।

नाटक शब्द कि उत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'नट' या 'नाट' धातु से बताई गयी है। जिसका अर्थ है – व्योप्नोति या गात्र विक्षेपन अर्थात शरीराभिनय द्वारा सात्विक भावों का प्रदर्शन। अभिनय हेतु रूप भरे जाने की कारण ही नाटक को रूपक भी कहा गया है। यद्यपि दोनों में सूक्ष्म अंतर भी है। इतिहास में देखे तो नाटक अत्यंत प्राचीन विधा भी है और बहु प्रचलित और बहुचर्चित भी हैं। भारतीय काव्यशास्त्र में जितना अधिक सिद्धांत विवेचन नाटक और उसके विभिन्न अंग उपांगों का मिलता है, उतना अन्य किसी साहित्यिक विधा का नहीं है।

नाटक की एक परिभाषा यहां दिया गया है- 'नाटक वह दृश्यकव्य है, जो प्रत्यक्ष कल्पना एवं अध्यवसाय का विषय बन कर सत्य एवं असत्य से समन्वित विलक्षण रूप धारण करके सर्वसाधारण को आनंद उपलब्धि करता है।'

भारतेन्दु हरिश्चंद्र को आधुनिक हिंदी नाटक का जनक तथा हिंदी नवजागरण का अग्रदूत कहा जाता है। हिंदी नाटकों का आरंभ भारतेन्दु हरिश्चंद्र से ही कहा जाना चाहिए क्योंकि इनसे पूर्व 'नाटक' नाम से जो रचनाएँ हिंदी में उपलब्ध होती है, वे या तो नाटकीय काव्य है अथवा संस्कृत के अनुवाद मात्र हैं, क्योंकि उनमें नाट्यकला के तत्वों का सर्वथा अभाव है, जैसे प्राणचंद चौहान कृत 'रामायण महानाटक' (1610) तथा कवि उदय कृत 'हनुमान नाटक' (1840) में पद्यात्मकता है तथा ये नाट्य रचनाएँ नहीं है। आधुनिक काल में भारतेन्दु जी के पिता गोपालचंद गिरिधरदास ने नहुष (1857), अयोध्यासिंह उपाध्याय

'हरिऔध' प्रद्युम्न विजय (1863) तथा शीतला प्रसाद ने 'जानकी मंगल' (1868) राजा लक्ष्मण सिंह ने 'शकुंतला', श्रीनिवासदास ने 'तप्तासंवरण' आदि नाटकों की रचना की। 1868 ई. में भारतेन्दु जी का 'विद्यासुंदर' नाटक प्रकाशित हो चुका था। यह नाटक पंचाशिका का हिंदी अनुवाद है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अपने पिता गोपालचंद गिरिधरदास द्वारा लिखित 'नहुष' (1857) को हिंदी का प्रथम मौलिक नाटक माना है। भारतेन्दु ने राजा लक्ष्मण सिंह कृत 'शकुंतला' नाटक को हिंदी का दूसरा, स्वयं के विद्यासुंदर को तीसरा तथा श्रीनिवासदास कृत 'तप्तासंवरण' को हिंदी का चौथा नाटक माना है। कुछ विद्वान रीवा नरेश विश्वनाथ सिंह द्वारा रचित 'आनंद रघुनंदन' को हिंदी का प्रथम मौलिक नाटक मानते हैं।

11.3.2 नाटक का विकास

हिंदी में नाटक के स्वरूप का समुचित विकास आधुनिक युग के आरंभ से होता है, जिस प्रकार हिंदी कहानी व उपन्यास में प्रेमचंद का स्थान केन्द्रीय महत्व का है, उसी प्रकार हिंदी नाटकों में जयशंकर प्रसाद का स्थान है।

जयशंकर प्रसाद जी को केंद्र में रखकर हिंदी नाट्य साहित्य को हम विभिन्न युगों *में बाँट सकते है*-

प्रसाद पूर्व हिंदी नाटक

प्रसादयुगीन हिंदी नाटक

प्रसादोत्तर स्वतन्त्रता पूर्व हिंदी नाटक

स्वतंत्र्योत्तर हिंदी नाटक

अब हम इन पर चर्चा करेंगे-

➢ भारतेन्दु युग अथवा प्रसाद पूर्व हिंदी नाटक -

इस युग के प्रतिनिधि नाटककार स्वयं भारतेन्दु हरिश्चंद्र है। उनके नाटक हिंदी के सर्वप्रथम मौलिक नाटक माना जाता है। उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी तथा बंगला भाषा नाटकों का विस्तृत अध्ययन किया और तत्कालीन रंगमच की आवश्यकताओं को भी अच्छी तरह समझ लिया था। उन्होंने अपने समकालीन साहित्यकारों को भी प्रेरणा दिया था और नाटक साहित्य को अधिकाधिक समृद्ध बनाने का सुकार्य किया। भारतेन्दु युग का नाटक साहित्य जीवन के विविध क्षेत्रों से सामग्री लेकर चला था। उसमें सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक समस्याओं का निरूपण हुआ है। इस युग के नाटककारों ने अपनी कृतियों के माध्यम से अनेक सामाजिक कुरीतिओं का पर्दाफाश किया है।

इस युग के प्रमुख नाटककार कुछ इस प्रकार है-

भारतेन्दु हरिश्चंद्र –

इनके प्रमुख रचनाएँ हैं– 'सती– प्रताप', 'नीलदेवी', 'सत्य हरिश्चंद्र', 'प्रेम योगिनी', 'भारत दुर्दशा' आदि। इन्होंने कुछ संस्कृत नाटकों का भी हिंदी अनुवाद किया था, जो हैं– 'कर्पूर मंजरी', 'धनंजय– विजय', 'मुद्रराक्षस' और 'विद्यासुंदर' आदि।

श्रीनिवास दास –

इनके कुछ प्रमुख नाटक हैं– 'रणधीर प्रेम मोहिनी', 'प्रह्लाद चरित', 'संयोगिता स्वयंबर' और 'तप्ता संवरण' आदि ।

बालकृष्ण भट्ट –

'दमयंती स्वयंवर', बाल–विवाह, चंद्रसेन, 'रेल का विकट खेल' जैसे नाटकों का इन्होंने सृजन किया है।

प्रतापनारायण मिश्र –

'गो संकट', 'कलिकौतुक', 'कलिप्रभाव', 'हठी हम्मीर', 'जुआरी–खुआरी' (प्रहसन)। संगीत शकुंतल (कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुंतम्' का अनुवाद) आदि नाटकों का इन्होंने रचना की है।

अंबिका दत्त व्यास –

'भारत सौभाग्य', 'देव पुरुष दृश्य', 'गो संकट' आदि नाटक व्यास के अन्यतम कृतियाँ है।

इस प्रकार भारतेन्दु युग में हिन्दी नाटक का विकास हुआ है। कथ्य की दृष्टि से वह राष्ट्रीय जागरण एवं सांस्कृतिक चेतना से प्रभावित है और शैली की दृष्टि संस्कृत नाटकों की परंपरा से। ये नाटक सरल, स्वाभाविक और पात्र के अनुकूल भाषा से निर्मित है।

➢ प्रसादयुगीन हिंदी नाटक –

इस युग में नाटक का अधिक विकास नहीं हुआ था। इसमें अंग्रेजी, संस्कृत और बांग्ला नाटकों का ही अनुवाद अधिक हुआ था। इन में नाटकों का महत्व न तो शिल्प की दृष्टि से है और न संस्कार एवं रुचि के दृष्टि से। उनका महत्व ऐतिहासिक है। प्रसाद पूर्व युग में हिन्दी नाट्य साहित्य को जो साहित्यिक भूमिका प्रदान की, प्रसाद युग में उसे जयशंकर प्रसाद ने पल्लवित किया। प्रसाद जी के समय तक रंगमंच का पूर्ण विकास नहीं हुआ था, जिसके कारण उनके नाटक पाठ्य अधिक व रंगमंच पर अभिनीत कम है।

आलोचक डॉ. गोपाल राय के अनुसार 'प्रसाद जी की कठिनाई यह थी कि वे जिस प्रकार के नाटक लिखना चाहते थे, उनके अनुरूप रंगमंच हिन्दी में नहीं था। हिन्दी का शौकिया रंगमंच नितांत अविकसित था, फलतः प्रसाद ने साहित्यिक रंगमंच की स्वयं कल्पना की और इस मानसिक रंगमंच की पृष्ठभूमि में ही अपने नाटक लिखे। प्रसाद जी अपने काल्पनिक रंगमंच को व्यावहारिक रूप नहीं दे सके, जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके नाटक अन्य सभी दृष्टियों से उत्कृष्ट होने पर भी अभिनय कि दृष्टि से सफल नहीं हो पाए।'

इस युग के प्रमुख नाटककार कुछ इस प्रकार है –

जयशंकर प्रसाद –

प्रसाद के 'करुणालय' में वैदिककाल, 'सज्जन' में महाभारत काल, 'जनमेजय का नागयज्ञ' में उपनिषदकाल, 'अजातशत्रु' में बौद्धकाल, 'चन्द्रगुप्त' में यूनानियों का आक्रमणकाल आदि ऐतिहासिक चित्रण है। 'सज्जन' (1910), 'कल्याणी परिचय' (1912) और 'करुणालय' (1913) आदि लघुनाट्य कृतियाँ है तथा प्रसाद जी की रचना प्रक्रिया के प्रथम सोपान है। 'करुणालय' हिंदी का प्रथम गीतिनाट्य है। 'राज्यश्री' (1915) में प्रसिद्ध वर्धन राजवंश की कुमारी राज्यश्री का चित्रांकन किया गया है। इस नाटक का आधार 'हर्षचरित' तथा चीनी यात्री ह्वेंनसांग का ऐतिहासिक विवरण है। 'विशाख' (1921) का कथानक कल्हण की 'राजतरंगिणी' के आरंभिक अंश पर आधारित है।

हरिकृष्ण प्रेमी –

प्रेमी ने मध्यकालीन इतिहास से विषय- वस्तु का चयन करते हुए भव्य ऐतिहासिक नाटकों की रचना की। 'स्वर्णविहान' (1930), 'रक्षाबंधन' (1934), 'पाताल विजय' (1936), 'प्रतिशोध' (1937), 'शिव- साधना' (1937) आदि नाटक लिखे। इनमें स्वर्णविहान गीतिनाटक है तथा शेष गद्य नाटक हैं।

लक्ष्मीनारायण मिश्र –

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'अशोक' (1927), 'संन्यासी' (1929), 'राक्षस का मंदिर' (1932), 'मुक्ति का रहस्य' (1932), 'राजयोग' (1934), 'सिंदूर की होली' (1934) और 'आधी रात' (1934) प्रमुख है। मिश्र समस्या प्रधान नाटकों के लिए प्रसिद्ध रहे है। प्रेम विवाह, काम, दाम्पत्य जीवन आदि उनके नाटकों की विषय वस्तु रहे है।

सेठ गोविंददास –

'प्रकाश' (1935), 'हर्ष' (1935), 'कर्तव्य' (1936) आदि सेठ गोविन्ददास के प्रमुख रचनाएं हैं। इन नाटकों में उन्होंने अनेक समकालीन समस्याओं का निरूपण किया है।

वृन्दावनलाल वर्मा –

प्रसाद जी के तरह ही वर्मा जी भी ऐतिहासिक नाटककार है। इन्होंने 'सेनापति ऊदल' (1909) जैसे प्रसिद्ध नाटक लिखे है। सेनापति ऊदल नाटक ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था ।

उपरोक्त प्रमुख नाटककारों के अतिरिक्त अन्य जिन लेखकों ने नाट्य रचना की है, उनका नाटकसाहित्य गुण की दृष्टि से समृद्ध न होने पर भी परिणाम की दृष्टि से आकर्षक है।

➢ प्रसादोत्तर स्वतन्त्रता पूर्व हिंदी नाटक –

इस युग में उन सभी प्रयोगों का विकसित रूप हम देखते हैं, जो प्रसाद ने किए थे। इस युग में भावना तथा आदर्श का स्थान यथार्थ ने ले लिया। राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में मजदूर किसान भी शामिल हो गए। इस युग में सिनेमा का प्रभाव अधिक बढ़ रहा था। इस युग में

ऐतिहासिक नाटकों की परंपरा का पर्याप्त विकास हुआ। इस युग में पौराणिक नाटकों की परंपरा का भी विकास हुआ। विभिन्न लेखकों ने पौराणिक आधार को ग्रहण करते हुए अनेक उत्कृष्ट नाटक प्रस्तुत किए है। इस युग में कल्पनाश्रित नाटकों को भी शामिल किया गया है। इन्हें मूल प्रवृत्ति की दृष्टि से तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- समस्या प्रधान नाटक, भाव प्रधान नाटक एवं प्रतीकात्मक प्रधान नाटक आदि।

इस युग के प्रमुख नाटककार कुछ इस प्रकार है-

हरिकृष्ण प्रेमी -

हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में 'शिव साधना' (1937), 'प्रतिशोध' (1937), 'स्वप्न भंग' (1940), 'आहुति' (1940), 'उद्धार' (1949) आदि को लिया जा सकता है। इनके विभिन्न नाटकों से राष्ट्रभक्ति, आत्म-त्याग, बलिदान, हिंदू-मुस्लिम एकता आदि भावों एवं प्रवृत्तियों की पुष्टि होती है।

वृंदावनलाल वर्मा -

वृन्दावनलाल वर्मा इतिहास के विशेषज्ञ हैं, उनकी यह विशेषज्ञता उपन्यास और नाटक दोनों के माध्यम से व्यक्त हुई है। उनके ऐहिहासिक नाटकों में 'झाँसी की रानी' (1948), 'पूर्व की ओर' (1950), 'बीरबल' (1950) आदि उल्लेखनीय हैं।

उपेन्द्रनाथ अश्क -

उपेन्द्रनाथ ने 'स्वर्ग की झलक' (1940), 'छठा बेटा' (1940), 'अलग अलग रास्ते' (1954), 'अंजो दीदी' (1954) आदि अनेक नाटकों की रचना की है। 'छठा बेटा' उनका प्रसिद्ध नाटक है, जिसमें पुत्रों की स्वार्थपरता का हास्य-व्यंगपूर्ण शैली में यथार्थ चित्र अंकित किया गया है। 'अंजो दीदी' में नाटककार ने अहंवादिता एवं प्राचीन संस्कारों के दुष्प्रभाव का वर्णन किया है।

इसके उपरांत कुछ उत्कृष्ट ऐतिहासिक नाटक इस प्रकार हैं - पृथ्वी नाथ शर्मा का 'उर्मिला' (1950), 'सागर-विजय' (1937), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का 'गंगा का बेटा' (1940), डॉ. लक्ष्मणस्वरूप का 'नल दमयंती' (1941), तारा मिश्र का 'देवयानी' (1944) आदि। लक्ष्मी नारायण मिश्र के समस्याप्रधान नाटक में 'आधी रात' (1937) उल्लेखनीय है।

अंतत: हम कह सकते है कि प्रसादोत्तर काल के नाटक की मुख्य धारा यदि कोई है तो वह है - यथार्थवादी नाट्यधारा, जिसने सामाजिक और समस्यामूलक नाटक को प्रश्रय दिया।

➢ स्वतंत्र्योत्तर हिंदी नाटक -

स्वतंत्रता के बाद हिंदी के नाटकों में जो प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं, उनमें आधुनिकता का बोध मुख्य है। स्वतंत्रता के बाद नव-निर्माण की आकांक्षा ने लोगों में उत्साह का संचार किया, लेकिन इस दिशा में मिली असफलता ने लोगों को निराश एवं कुंठित किया। इन परिस्थितियों में मध्यम वर्ग सर्वाधिक प्रभावित हुआ। अंत: इस दौर में जो नाटक लिखे गए,

उनमें मध्यम वर्ग की आशाओं, आकांक्षाओं व विडंबनाओं का चित्रण किया गया है।

स्वतंत्रता के पश्चात हिंदी साहित्य में साठोत्तरी नाटकों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 1960 के पश्चात लिखे गए नाटक साठोत्तरी नाटकों की श्रेणी में आते हैं। साठोत्तरी नाटकों में लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, गोविंद वल्लभ पंत, भगवतीचरण वर्मा, अममृतलाल नागर आदि उल्लेखनीय है, तो दूसरी पीढ़ी में विष्णुप्रभाकर, भीष्म साहनी, मोहन राकेश आदि उल्लेखनीय है।

आज का नाटक रंगमंच की दृष्टि से आशावादी बन गया है तथा मानव मूल्यों के प्रति अगाध निष्ठा स्थापित हुई है। इस युग के कुछ प्रमुख नाटककारों का नाम इस प्रकार है :

विष्णु प्रभाकर -

विष्णु प्रभाकर ने अपने नाटकों में आधुनिक भावबोध से उत्पन्न तनाव एवं जीवन संघर्ष को सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। 'डॉक्टर' (1958), 'युगे-युगे क्रांति' (1969) और 'टूटते परिवेश' (1974) इनके प्रमुख नाटक है। 'डॉक्टर' एक मनोवैज्ञानिक नाटक है तथा 'टूटते परिवेश' में पारिवारिक विघटन को यथार्थ अभिव्यक्ति मिलती है।

जगदीशचंद्र माथुर -

जगदीशचंद्र माथुर ने हिंदी रंगमंच को नई दिशा देने का प्रयास अपने बहुचर्चित नाटकों के माध्यम से किया। 'कोणार्क' (1951), 'पहला राजा' (1969) तथा 'दशरथनंदन' (1974) आदि उनके प्रसिद्ध नाटक है।

अंत में हम कह सकते है की हिंदी नाटक के क्षेत्र में स्वतंत्रयोत्तर काल भारतेंदु काल के बाद सर्वाधिक सक्रियता का काल रहा है। इस दौर में कथ्य और शिल्प के स्तर पर तीव्र परिवर्तनों ने हिंदी नाटक को एक नई दिशा दी है। संचार माध्यमों के दबाव के पश्चात ये परिवर्तन हिंदी नाटक के विकास के प्रति आश्वस्त करते है।

11.4 एकांकी साहित्य का उद्भव एवं विकास

11.4.1 एकांकी का उद्भव

हिंदी का आज का एकांकी साहित्य पाश्चात्य नाटकों से बहुत प्रभावित दृष्टिगोचर होता है। हिंदी का एकांकी साहित्य भी नाटक साहित्य के समान अपेक्षाकृत अल्पकाल में पर्याप्त समृद्ध हो गया है। एकांकी नाटक के परंपरागत रूप का ह्रास है, पर उसका अर्थ का विस्तार है। स्वाधीनता के बाद जो सांस्कृतिक व साहित्यिक उत्साह और ऊर्जा का विस्फोट हुआ था, जिसके कारण प्राय: प्रत्येक शिक्षानुष्ठान जैसे महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में वार्षिक सांस्कृतिक एवं साहित्यिक आयोजन होते थे, उनमें एकांकी नाटकों का मंचन भी अनिवार्य था। एकांकीकारों को उस समय रेडियो ने प्रश्रय दिया और छोटे-छोटे रेडियो नाटक लिखे जाने लगे थे। रेडियो नाटक मंचीय नाटकों से अनेक अर्थों में भिन्न हैं। रेडियो

नाटक दृश्यकाव्य न रह कर श्रव्यकाव्य बन गया है। रेडियो के लिए छोटे नाटक लिखने लगे थे। एकांकी नाटक का विकास होते-होते उसमें फैन्टसी, संगीत रूपक आदि शामिल होने लगे।

एकांकी का शाब्दिक अर्थ है- 'एक अंक वाला'। यह नाटक के समान ही अभिनय से संबंधित साहित्य की एक विधा है, जिसमें किसी घटना या विषय को एक अंक में प्रस्तुत किया जाता है। नाटक के विभिन्न भेदों में से व्यायोग, प्रहसन, भाण, वीथी, नाटिका गोष्ठी आदि में एक ही अंक होता है। अत: इन्हें प्राचीन ढंग की 'एकांकी' कह सकते हैं। संस्कृत एवं प्राकृत में 'एकांकी' के अनेक उदाहरण मिलते है।

11.4.2 एकांकी का विकास

आधुनिक हिंदी एकांकी नाटक का वास्तविक आरंभ 'एक घूँट' से ही हुआ है, किंतु इससे पूर्व के एकांकी साहित्य का ऐतिहासिक महत्व है और उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। हिंदी एकांकी के विकास को मुख्यत: चार युगों में विभक्त कर सकते है- भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, प्रसाद युग, प्रसादोत्तर युग।



महत्वपूर्ण बिंदु -

एक घूँट जयशंकर प्रसाद लिखित एक एकांकी नाटक है, जिसका प्रकाशन सन् 1930 ई. में भारती भंडार, इलाहाबाद से हुआ था।

➢भारतेन्दु युग -

इस युग के एकांकी साहित्य में तत्कालीन जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। उसमें सामाजिक एवं राजनीतिक बुराइयों पर प्रकाश डाला गया है।

हिंदी में एकांकी लेखन का आरंभ भारतेन्दु युग से होता है, हिंदी एकांकियों का आरंभ भारतेन्दु हरिश्चंद्र द्वारा हुआ। उन्होंने प्राचीन संस्कृत नाट्य साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करते हुए नाटक व एकांकी के विभिन्न रूपों के विकास का प्रयत्न किया। उन्होंने 'धनंजय-विजय', 'प्रेम-योगिनी', 'पाखण्ड-विडम्बनम', 'अंधेर नगरी', 'विषस्य विषमौषधम', 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' आदि की रचना की। जिनमें प्राचीन ढंग की एकांकियों के लक्षणों का निर्वाह हुआ है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र के अतिरिक्त उनके युग में अन्य लेखकों ने सौ से अधिक रूपकों व प्रहसनों आदि की रचना की, जिन्हें प्राचीन ढंग की एकांकियों के लक्षणों का निर्वाह हुआ है। श्रीनिवास दास के 'प्रह्लाद चरित', राधाचरण गोस्वामी के 'श्रीदामा नाटक', देवकीनन्दन त्रिपाठी के 'जय नरसिंह' और बालकृष्ण भट्ट के 'शिक्षादान' आदि इस युग के उल्लेखनीय

एकांकीकार है।

➢ द्विवेदी युग -

द्विवेदी युग में हिंदी एकांकी का स्वरूप पर पाश्चात्य एकांकी का भी प्रभाव प?ने लगा, जिससे उनके बाह्य रूप में क्रमश: थोड़ा थोड़ा अंतर आने लगा, किंतु उनकी मूल आत्मा भारतेन्दु युग के अनुरूप ही रही। उनका प्रमुख उद्देश्य समाज सुधार एवं राष्ट्रोन्नति ही रहा। इस युग की प्रमुख एकांकियों में मंगल प्रसाद विश्वकर्मा का 'शेरसिंह', सियारामशरण गुप्त का 'कृष्णा', ब्रजलाल शास्त्री के 'भारती' में प्रकाशित अनेक एकांकी 'नीला', 'दुर्गावती', 'पन्ना', 'तारा' आदि। रामसिंह वर्मा दो प्रहसन 'रेशमी रुमाल' और 'क्रिसमस', सरयू प्रसाद बिन्दु की 'भयंकर भूत', शिवरामदास गुप्त की 'नाक में दम', बद्रीनाथ भट्ट की 'रेग? समाचार के एडीटर की धुल दच्छना', रूपनारायण पाण्डेय की 'मूर्ख मंडली', पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की 'चार बेचारे', श्री सुदर्शन की 'आनरेरी मेजिस्ट्रेट' आदि उल्लेखनीय है।

➢ प्रसाद युग -

पाश्चात्य शैली में लिखी गई एकांकी को 'आधुनिक एकांकी' कह सकते हैं। इसका विकास हिंदी में लगभग 1930 ई. के अंतर्गत हुआ। हिंदी के अधिकांश अधिकारी विद्वानों ने जयशंकर प्रसाद से हिंदी एकांकी का आरंभ माना है। इन्होंने सन 1930 में 'एक घूँट' एकांकी की रचना की। इसमें आधुनिक एकांकी कला का परिष्कृत रूप देखने को मिलता है। प्रसाद के उपरांत हिंदी एकांकी को विकास प्रदान करने में सूर्य किरण पारीख, जैनेन्द्र कुमार, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार आदि का योगदान भी उल्लेखनीय है।

➢ प्रसादोत्तर युग -

मौलिक एकांकियों की परंपरा को आगे बढ़ाने का श्रेय सर्वप्रथम डॉ. रामकुमार वर्मा को है। उनकी 'बादल की मृत्यु' एकांकी 1930 ई. में प्रकाशित हुई, जिसे डॉ. सत्येन्द्र ने 'एक घूँट' के अनंतर दूसरा स्थान दिया है। प्रयोग की दृष्टि से एकांकी के इतिहास में इसका स्थान महत्वपूर्ण माना गया है। इसके बाद वर्मा के कई एकांकी संग्रह प्रकाशित हुए, जिन्हें कालक्रमानुसार इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है : 'पृथ्वीराज की आंखे', 'रेशमी टाई', 'चारुमित्रा', 'विभूति', 'सप्तकिरण', 'रूपरंग', 'कौमुदी महोत्सव', 'ध्रुव- तारिका', 'ऋतुराज', 'रजत रश्मि', 'दीपदान', 'काम कंदला', 'बापू', 'इंद्रधनुष', 'रिमझिम' आदि। डॉ. रामकुमार वर्मा के साथ-साथ ही एकांकी के क्षेत्र में अवतीर्ण होने वाले लेखकों एन श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविंददास, जगदीशचन्द्र माथुर, गणेश प्रसाद द्विवेदी आदि प्रमुख है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के कुछ प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार है- 'अशोक वन', 'प्रलय के पंख पर', 'एक दिन', 'कावेरी में कमल', 'बलहीन', 'नारी का रंग', 'स्वर्ग में विप्लव', 'भगवान मनु' तथा अन्य एकांकी आदि। सामाजिक समस्याओं के चित्रण में उपेन्द्रनाथ अश्क को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई।

हिंदी एकांकी जगत में व्यंग्य की तीखी चोट करने में उपेंद्रनाथ अश्क की बराबरी हिंदी का और कोई एकांकी लेखक नहीं कर सका। 'अधिकार का रक्षक' उनकी इस व्यंग्यात्मक शैली का स्थायी प्रमाण है। जगदीशचन्द्र माथुर के एकांकी 'भोर का तारा', 'रीढ़ की हड्डी', 'मकड़ी का जाल', 'खंडहर खिड़की की राह', 'कबूतर खाना', 'भाषण', 'ओ मेरे सपने', 'शारदीय', 'बंदी' आदि है। उनकी रचनाओं में विचार और अनुभूति और कला तथा ज्ञान एवं मनोरंजन दोनों का सुंदर समन्वय मिलता है।

अंत में हम कह सकते है कि हिंदी एकांकी विकास के पथ पर अग्रसर है, जिसके परिणामस्वरूप आज हिंदी एकांकी के विकास की पर्याप्त संभावनाएं दिखाई दे रही है।



अपनी प्रगति जाँचें

प्रश्न 1 – एकांकी साहित्य के उद्भव तथा विकास के बारें में लिखिए।

प्रश्न 2 – एकांकी साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चंद्र के योगदान को लेकर एक आलेख प्रस्तुत कीजिए?



11.5 सारांश

समाज और साहित्य का संबंध अतुलनीय है। दोनों ही एक दूसरे से संबंधित है। एक समाज का स्वरूप साहित्य में प्रकाशित होता है। इसी साहित्य के कुछ गद्यात्मक विधा है– नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, निबंध आदि।

नाटक बहुत पुरानी गद्य विधा है। यह दृश्य और श्रव्य दोनों विधा में उपलब्ध होते है। एक नाटक का आनंद दर्शक, श्रोता तथा पाठक के रूप में भी ली जा सकती है। सामाजिक विचार धारा को नाटक के द्वारा जनसाधारण के सामने ले आना सबसे आसान है। नाटक का ही एक छोटा रूप है एकांकी। एकांकी में एक अंक होते है और नाटक में एक से अधिक। दोनों का महत्व साहित्य जगत में समान है।

आधुनिक काल से अब तक नाटक और एकांकी का जो जनप्रियता है, वह अब भी पूर्ण रूप से दिखाई देता है और इसका यह जनप्रियता आनेवाले समय में भी बढ़ता रहेगा।

11.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर – आधुनिक हिन्दी साहित्य की जिन गद्यात्मक विधाओं का विकास विगत एक शताब्दी में हुआ है, उनमें एकांकी का भी महत्वपूर्ण स्थान है। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से, हिन्दी–साहित्य में इसका उद्भव उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में माना जाता है। अधिक जानने के लिए कृपया इकाई में देखें।

प्रश्न 2 का उत्तर – हिंदी में नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चंद्र से माना जाता है और इसकी शुरुआत बंगला के विद्यासुन्दर (1867) नाटक के अनुवाद से होती है। उन्होंने हरिश्चंद्र चन्द्रिका, कविवचन सुधा और बाला बोधिनी पत्रिकाओं का संपादन भी किया। वे एक उत्कृष्ट कवि, सशक्त व्यंग्यकार, सफल नाटककार, जागरूक पत्रकार तथा ओजस्वी गद्यकार थे। अधिक जानने के लिए कृपया इकाई को पढ़ें।

11.7 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
3. लक्ष्मी लाल बैरागी, हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का इतिहास, संघी प्रकाशन, जयपुर।
4. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

11.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए –

1. भारतेन्दु हरिश्चंद्र के किसी एक नाटक का नाम उल्लेख करे ?
2. 'अँधेरे में' रचनाकार का नाम बताएं ?
3. 'चन्द्रगुप्त' किसकी रचना है ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए –

1. नाटक साहित्य के उद्भव तथा विकास के बारे में वर्णन कीजिए।

2. प्रसादोत्तर किसी एक नाटककार के बारे लिखिए अथवा प्रसादयुगीन नाटककारों के बारे में चर्चा कीजिए।
3. स्वतंत्र्योत्तर हिंदी नाटक की के बारें में लिखिए और एक तर्क दीजिये की नाटक में रंगमच का क्या भूमिका हैं?
4. प्रसादोत्तर युग के एकांकी के बारे में चर्चा कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 12 उपन्यास एवं कहानी साहित्य

इकाई की रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 उपन्यास साहित्य का उद्भव एवं विकास

12.3.1 उपन्यास का उद्भव

12.3.2 उपन्यास का विकास

12.4 कहानी साहित्य का उद्भव एवं विकास

12.4.1 कहानी का उद्भव

12.4.2 कहानी का विकास

12.5 सारांश

12.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

12.7 अधिक जानने के लिए पढ़े

12.8 अभ्यास प्रश्न

12.1 उद्देश्य

इस अध्याय से आप–

- उपन्यास साहित्य के उद्भव के बारे में जानेंगे।
- उपन्यास साहित्य ने हिंदी साहित्य के नए आयाम के बारे में जान पाएंगे।
- उपन्यास साहित्य का उद्भव एवं विकास के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- कहानी साहित्य के उद्भव के बारे में जान पाएंगे।
- कहानी साहित्य के विकास के बारे में भी ज्ञात हो पाएंगे।

12.2 प्रस्तावना

पाठ्यक्रम के इस इकाई में आप हिंदी साहित्य के आधुनिक दो गद्य विधाओं के बारें जान पाएंगे। प्रथम गद्य विधा है– उपन्यास और दूसरा है– कहानी। साहित्य के क्षेत्र में कहानी और उपन्यास दो महत्वपूर्ण विधा है। मानव समाज के शुरुआत से ही कहानी का आरंभ हुआ था। खड़ीबोली भाषा के विकास के साथ–साथ काहनियाँ लिखने की प्रवृत्ति दिखाई पढ़ती है, किंतु प्रारंभिक अवस्था की कहानियाँ पुरानों या संस्कृत का भावानुवाद है।

लेकिन उपन्यास का जन्म आधुनिक युग में हुआ था। उपन्यास का विकास का श्रेय अंग्रेजी एवं बंगला उपन्यासों को दिया जा सकता है। सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित एक निबंध 'उपन्यास रहस्य' में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने यह स्वीकार है कि 'हम लोग जैसे बातों में अंग्रेजी की नकल करते है, वैसे ही उपन्यास लेखन में भी उन्हीं का अनुकरण किया करते है।'

12.3 उपन्यास साहित्य का उद्भव एवं विकास

12.3.1 उपन्यास का उद्भव

कथा साहित्य के अंतर्गत हिंदी उपन्यास एवं हिंदी कहानी दोनों समावेश हैं। हिंदी का पहला उपन्यास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'परीक्षा गुरु' को माना है। जिसकी रचना लाला श्रीनिवास दास ने 1882 वीं में किया था। इस उपन्यास की कथा मदनमोहन की चारित्रिक पतन तथा बाद में ब्रजमोहन द्वारा उसके सुधार के चारों और घुमती है। उपन्यास में उपदेशात्मक एवं सुधारवाली दृष्टिकोण मिलती है।

हिंदी के पहले उपन्यासों में इन उपन्यासों का नाम लिया जाता हैं-

- परीक्षा गुरु-लाला श्रीनिवास दास
- देवरानी जेठानी की कहानी- पंडित गौरी दत्त
- नि:सहाय हिंदू- राधाकृष्ण दास
- भाग्यवती- श्रद्धाराम फिल्लौरी

12.3.2 उपन्यास का विकास

हिंदी उपन्यासों के उद्भव और विकास के संबंध में सम्यक धारणा बनाने के लिए प्रारंभ से आज तक के विकास को तीन कालखंड में विभक्त किया जाता है। वह हैं-

- प्रेमचंद- पूर्व हिंदी उपन्यास
- प्रेमचंदयुगीन हिंदी- उपन्यास
- प्रेमचंदोंत्तर हिंदी उपन्यास

उपन्यासकार सम्राट मुंशी प्रेमचंद एक ऐसे केंद्रबिंदु है, जिनके दोनों ओर उपन्यास साहित्य की भिन्न रेखाएं स्पष्ट दिखाई देती है।

- **प्रेमचंद पूर्व युग** -

प्रेमचंद युग में एक ओर समाज सुधार, नैतिकता के प्रचार तथा धार्मिक उपदेशों को दृष्टि में रखकर उपन्यासों की रचना हुई और दूसरी ओर मनोरंजन तिलस्सी एवं जासूसी उपन्यासों का सृजन हुआ। इस युग में हिंदी उपन्यास को विकसित करने में अनेक लेखकों

का योगदान प्राप्त हुआ । उनमें से प्रमुख कुछ इस प्रकार है–

➢ **भारतेंदु हरिश्चंद्र** –

इन्होंने 'हम्मीर हठ' नाम से एक उपन्यास प्रारम्भ किया था, जिसे ये पूरा न कर सकें।

➢ **अयोध्यासिंह उपाध्याय** –

इन्होंने 'अधखिला फूल' और 'ठेठ हिंदी का ठाठ' नामक उपन्यासों की रचना की हैं। इन उपन्यासों में सामाजिक विसंगतियों एवं काम वृत्तियों से संबंध द्वंद एवं संघर्ष को चित्रित किया गया है।

➢ **बालकृष्ण भट्ट** –

भट्ट जी ने 'नूतन ब्रह्मचारी', 'सौ अजान और एक सुजान' आदि सामाजिक उपन्यासों का सृजन किया है और उनमें सुधारवादी विचारधारा को प्रधानता दी है।

➢ **श्रीनिवास दास** –

इन्होंने 'परीक्षा गुरु' नामक सामाजिक उपन्यास की सृष्टि की है। इसमें दिल्ली में एक सेठ पुत्र की कहानी है। सेठ पुत्र कुसंगति में पड़ता है और अंत में उसका एक सज्जन मित्र द्वारा उद्धार हो जाता है। यह उपदेशात्मक प्रवृत्ति का उपन्यास है।

➢ **देवकीनंदन खत्री** –

तिलस्मी अय्यारी उपन्यास की शुरुआत खत्री के द्वारा ही हुआ है, यह माना गया है। 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इन औपन्यासिक कृतियों की चर्चा चारों और इतनी अधिक फैल गई कि जो लोग हिंदी की पुस्तकें नहीं पढ़ते थे, वे भी इन नामों से परिचित हो गए और 'चंद्रकांता' को पढ़ने के लिए हिंदी जाननेवाले उर्दू भाषी लोगों ने भी हिंदी सीखी थी। खत्री जी का अनुसरण करते हुये अनेक उपन्यासकारों ने तिलस्मी एवं अय्यारी उपन्यासों का सृजन किया।

➢ **प्रेमचंद युग** –

प्रेमचंद युग हिंदी उपन्यास का उत्कर्ष युग है। इसमें आकर हिंदी उपन्यासों को क्रांति का संचार होता है। इस युग के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकर मुंशी प्रेमचंद है। इनका आगमन हिंदी जगत के लिए वरदान सिद्ध हुआ हैं। उपन्यास साहित्य की परंपरा में युग स्त्रष्टा का सम्मान पाने के पूर्ण अधिकारी है।

प्रेमचंद में कई प्रकार के उपन्यास लिखे गए है– सामाजिक, राजनीतिक, जासूसी अय्यारी तिलस्मी प्रधान, ऐतिहासिक, हास्य– व्यंग प्रधान, व्यक्तिवादी एवं मनोवैज्ञानिक उपन्यास। इस युग के लेखकों में प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, विश्वनाथ शर्मा कौशिक, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', वृंदावनलाल वर्मा, ऋषभ चरण जैन प्रभृति के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

➢ **प्रेमचंद** –

मुंशी प्रेमचंद हिंदी उपन्यासकार सम्राट के रूप में प्रसिद्ध है। इनके उपन्यासों में प्रथम बार जन-सामान्य को वाणी मिली। इनके उपन्यास भारतीय राष्ट्रीय आंदोलनों के सटीक भाष्य हैं। इन्होंने दो प्रकार के उपन्यास लिखे है- सामाजिक और राजनीतिक। ये उपन्यास समग्र रूप से भारतीय जीवन की बहुमुखी समस्याओं को चित्रित करते हैं। प्रेमचंद जी ने अनेक समस्याओं लेकर उपन्यास लिखा है। वे हैं-

- **सामाजिक उपन्यास** -

'वरदान', 'प्रतिज्ञा', 'सेवासदन', 'गबन', 'निर्मला' आदि। इनमें अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, वेश्या समस्या, विधवा समस्या आदि का बड़े सफलता के साथ निरूपण हुआ हैं।

- **राजनीतिक उपन्यास** -

'कर्मभूमि', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'गोदान' आदि। इन उपन्यासों में भूमि समस्या, औद्योगिक-समस्या, अछूत समस्या, कृषक समस्या आदि का बड़े कलात्मक वर्णन हुआ हैं।

'गोदान' प्रेमचंद का ही नहीं, हिंदी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें भारतीय कृषकों की समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है।

- **जयशंकर प्रसाद** -

प्रसाद ने 'कंकाल', 'तितली' और 'इरावती' (अधूरा) नामक उपन्यासों की रचना की हैं। 'कंकाल' यथार्थवादी उपन्यास है।

- **विश्वम्बर नाथ शर्मा कौशिक** -

कौशिक जी ने 'माँ' और 'भिखारिणी' नामक उपन्यास लिखे और ये प्रेमचंद के आर्शवादी दृष्टिकोण से बहुत प्रभावित हुए हैं।

- **चतुरसेन शास्त्री** -

चतुरसेन शास्त्री ने वैशाली की नगरवधू, [1] सोमनाथ , वयंरक्षामः, गोली, सोना और खून (तीन खंड), रक्त की प्यास, हृदय की प्यास, अमर अभिलाषा, नरमेघ, अपराजिता, धर्मपुत्र,देवांगना आदि उपन्यास लिखे है। इनके ये उपन्यास यथार्थवादी है और समाज के कठोर न पिशाचों, काली-करतूतों को प्रकाशित करते हैं।

- **पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'** -

'उग्र' प्रेमचंद युग के विशिष्ट लेखक और शैलीकार है। इन्होंने प्रेमचंद द्वारा प्रवर्तित यथार्थवादी उपन्यास परंपरा को विकसित किया है। जीवन कुत्सित अंगों का चित्रण करके, एक नया पथ ग्रहण किया है। इन्होंने 'दिल्ली का दलाल', 'चंद्र हसीनों की खतूत', 'बुधुआ की बेटी', 'शराबी' आदि उपन्यासों की रचना की हैं।

- **निराला** -

छायावादी कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने भी उपन्यासों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इनके उपन्यासों में भावुकता एवं काव्यात्मकता का समावेश हुआ है। इन्होंने नारी समस्या की यथार्थता का चित्रण किया है। 'अप्सरा', 'अलका', 'निरूपमा', 'प्रभावती' आदि इनकी रचना हैं।

प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों में विविधता एवं शिल्पगत नवीनता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इन उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को चित्रित किया गया है। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में मनोरंजन का पुट भी मिलता है।

➢ **प्रेमचंदोत्तर युग** -

प्रेमचंद की विरासत को उनके उत्तराधिकारी संभालने में पूर्ण समर्थ रहें। उनके पश्चात यह वेगवती धारा कई शाखाओं पर बत गयी। प्रेमचंद के बाद कुछ दिनों तक जैनेन्द्र की खूब चर्चा रहीं। परंतु आगे चलकर वह आध्यात्म्य चक्कर में पड़कर विचित्र दर्शन के माध्यम से लोक परलोक गुठ्ठियाँ सुलझाने में व्यस्त हो गए और अब भी है। प्रेमचंद पर प्रकाश चंद्र गुप्त ने लिखा है कि प्रेमचंद की किसान परंपरा को ताजा कर हिंदी उपन्यासों को अनेक नई शाखाओं में बढ़ा तत्व और रूप दोनों दृष्टिओं से एक धारा निम्न मध्यवर्गी की जीवन, उसकी निराशाओं और सफलताओं को अपनाना हैं। इसकी प्रमुख परिचय जैनेन्द्र कुमार, भगवती चरण वर्मा, जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे बाजपेयी और उपेंद्र नाथ आदि ने दिया। दूसरी धारा व्यक्तिवादी, अहंवादी, नाशवादी दृष्टिकोण को अपनाती है। इसकी प्रतिनिधि भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय आदि। साथ ही और एक धारा मनोविश्लेषण शास्त्र के प्रभाव में कुंठित, अतृप्त वासनाओं की अभिव्यक्ति करती है। इसके प्रमुख प्रतिनिधि पंडित इलाचंद जोशी है और दूसरी ओर भारतीय श्रमजीवि वर्ग का अग्रगामी शक्तियों से संबंध जोड़ती है और भविष्य की धरती को संवारती है। इसके प्रमुख प्रतिनिधि उपन्यासकार है। यशपाल, रांगेय राघव, पहाड़ी, भगवतीचरण वर्मा, नागार्जुन, अमृतलाल नागरी आदि ।

प्रेमचंद जी के बाद के उपन्यासों को विषय की दृष्टि से हम निम्न पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं– मनोविश्लेषणवादी उपन्यास, प्रगतिवादी अथवा मार्क्सवादी उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, आंचलिक उपन्यास, प्रयोगवादी उपन्यास मनोविश्लेषणवादी उपन्यास:

1. जैनेन्द्र कुमार -

प्रेमचंदोत्तर युग के व्यक्तिवादी उपन्यास परंपरा को विकसित करने से श्री जैनेन्द्र कुमार का योगदान उल्लेखनीय है। 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विवर्त', 'व्यतीत', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'परख' आदि उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

2. इलाचन्द्र जोशी -

'लज्जा', 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया', 'निर्वासित', 'मुक्ति पथ', 'जिप्सी', 'सुबह के भूले', 'जहाज का पंछी' आदि उपन्यासों की रचना इलाचन्द्र जोशी ने की है। जिनमें फ्रायड, एडलर, युंग, आदि मनोविश्लेषणकर्ताओं के सिद्धांतों के आधार पर काम, अहं, दंभ, आत्महीनता की ग्रंथि आदि के विभिन्न रूपों का चित्रण अत्यंत सूक्ष्म,

यथार्थ एवं सजीव रूप में हुआ है।

3. सच्चिदानंद हीरानंद वत्स्यायन 'अज्ञेय'-

अज्ञेय ने भी अपने उपन्यासों में 'शेखर : एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने अपने अजनबी' में यौन प्रवृत्तियों का चित्रण किया है, जो कहीं कहीं अत्यधिक अस्वाभाविक एवं असामाजिक भी हो सकता है। इसलिए उनकी कृतियों की प्रारम्भ में पर्याप्त निंदा हुई। 'शेखर : एक जीवनी' वैयक्तिक मनोविज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र में एक महती उपलब्धि मानी जा सकती है।

4. प्रगतिवादी अथवा मार्क्सवादी उपन्यास -

1. यशपाल -

यशपाल का 'झूठा- सच'(1960) सर्वोत्कृष्ट उपन्यास माना जाता है। इस उपन्यास में वर्ष 1947 के भारत विभाजन की घटना को आधार बनाकर सांप्रदायिक दंगे, अत्याचार, बलात्कार की घटनाएँ तथा शरणार्थियों के जीवन की कठिनाइयों के बारें में चित्रण किया है। 'दादा कामरेड' में विभिन्न राजनीतिक आंदोलनों तथा नेताओं के चरित्र का अंकन करते हुए अप्रत्यक्ष रूप में अपने युग की तीन राजनीतिक विचारधाराओं गांधीवाद, आतंकवाद और साम्यवाद की आलोचना प्रस्तुत किया गया है।

2. अमृतलाल नागर:

'सेठ बांकमेल', 'अमृत और विष', 'बूँद और समुद्र', 'महाकाल', 'शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर', 'मानस का हंस', 'खंजन नयन' आदि अमृतलाल नागर के उपन्यास है। 'बूँद और समुद्र' उनका श्रेष्ठतम उपन्यास है, जिसमें भारतीय समाज की रीति नीति, आचार- विचार, जीवन दृष्टि आदि का चित्रण किया गया है। 'मानस का हंस' उनके जीवनीपरक है।

ऐतिहासिक उपन्यास -

1. वृन्दावन लाल वर्मा -

वृन्दावन लाल वर्मा के उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यास कुछ इस प्रकार है- 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'अहिल्याबाई', 'माधोजी सिंधिया' आदि।

2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी -

द्विवेदी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (1946) तथा 'चारुचंद्र लेख' (1962) दोनों उपन्यासों में छठी-सातवीं शती में पतनोन्मुखी भारत की सभ्यता एवं संस्कृति का चित्रण अत्यंत सूक्ष्म एवं सजीव रूप से हुआ है।

आंचलिक उपन्यास -

1. नागार्जुन -

'रतिनाथ की चाची' (1948), 'बलचनमा' (1952), 'नई पौध' (1953), 'बाबा बटेसरनाथ' (1954), 'वरुण के बेटे' (1957) आदि नागार्जुन के कुछ उल्लेखनीय कृतियाँ है।

2. फणीश्वरनाथ रेणु -

रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' (1954), 'परती परिकथा' (1957) आदि है। 'मैला आँचल' में रेणु ने किसान जमीदार संघर्ष तथा राजनीतिक आंदोलनों का चित्रण किया है। 'परती परिकथा' में जमीदारी प्रथा के अंत, नए बंदोबस्त, भूमिदान, राजनीतिक दलों का स्वार्थपरायणता आदि चित्रण हुआ है।

प्रयोगवादी उपन्यास -

1. मोहन राकेश -

'अंधेरे बंद कमरे' (1961) और 'न आनेवाला कल' (1968) मोहन राकेश के प्रयोगवादी विचार धारा से युक्त उपन्यास है।

इसके उपरांत राजेंद्र प्रसाद और मन्नू भण्डारी के संयुक्त प्रयास से 'एक इंच मुस्कान' का रचना हुआ तथा मन्नू भण्डारी के 'आपका बंटी', भीष्म साहनी के 'तमस' इसी विचार धारा के रचनाएँ है।

12.4 कहानी साहित्य का उद्भव एवं विकास

12.4.1 कहानी का उद्भव

भारतीय परंपरा में कथा एवं कहानियों का इतिहास बहुत पहले से ही चलता आ रहा है। संस्कृत साहित्य में बृहत कथामंजरी, कथासरित्सागर, हितोपदेश, पंचतंत्र आदि कहानियाँ है। यद्यपि इनमें कहानी के तत्व विद्यमान नहीं है, किंतु इन कथाओं के माध्यम से भारतीय समाज में नीति नैतिकता और आदर्श की शिक्षाएं मिलती है। कहानी के रूप में साहित्य की जिस विधा का अध्ययन हम करते हैं, वह पाश्चात्य साहित्य के माध्यम से हिंदी साहित्य में आई है। हिंदी कहानी के उद्भव विकास में बांग्ला साहित्य का उल्लेखनीय योगदान है। हिंदी कहानी हिंदी साहित्य की प्रमुख कथात्मक विधा है।

हिंदी कहानी का विकास 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन वर्ष 1900 से माना जाता है, लेकिन इससे पूर्व भी कहानियाँ लिखी गई थी, जिस कारण हिंदी की प्रथम कहानी को लेकर विद्वानों में मतभेद है -

- रामरतन भटनागर ने 'मुंशी इंशा अल्ला खाँ' की 'रानी केतकी की कहानी' (1872) को हिंदी की प्रथम कहानी माना है।
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'किशोरीलाल गोस्वामी' की 'इंदुमती' (1900) को हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी माना है।
- देवीप्रसाद वर्मा ने 'माधवराव सप्रे' की 'एक टोकरी भर मिट्टी' (1901) को हिंदी की ओहली मौलिक कहानी माना है।
- डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल ने 'रामचन्द्र शुक्ल' की 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903) को हिंदी की पहली कहानी माना है।
- रायकृष्ण दास ने 'राजेंद्रबाला घोष' 'बंग महिला' की 'दुलाईवाली' (1907) को हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी माना है।

उपरोक्त मतों के आधार पर 'इंदुमती' को हिंदी की पहली कहानी माना जा सकता है।

12.4.2 कहानी का विकास

हिंदी कहानी की विकास में मुंशी प्रेमचंद का महत्वपूर्ण योगदान है, उन्होंने अपने लेखन कौशल से कहानी विधा को साहित्य की मुख्य विधा के रूप में स्थापित करने में विशेष भूमिका निभाई थी। मुंशी प्रेमचंद को कहानी विधा का आधार स्तम्भ मानते हुए हिंदी कहानी की विकास यात्रा को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है :

1. प्रेमचंद पूर्व हिंदी कहानी
2. प्रेमचंदयुगीन हिंदी कहानी
3. प्रेमचंदोत्तर हिंदी कहानी
4. स्वतंत्र्योत्तर हिंदी कहानी

1. प्रेमचंद पूर्व हिंदी कहानी (1900- 1915) -

हिंदी कहानियां इस काल में अपना अस्तित्व ले रही थी। नए मौलिक विषयों पर कहानियाँ लिखी जा रही थी । हिंदी कहानी मुख्यत: द्विवेदी युग में प्रारम्भ हुई थी, हालकि भारतेन्दु युग या उससे पूर्व में भी कहानियाँ लिखी गई, किन्तु उन्हें हिंदी की मौलिक कहानी नहीं माना जा सकता है, क्योंकि इस काल भारतेन्दु हरिश्चंद्र सहित अन्य साहित्यकार नाटकों और निबंधों के लेखन में अधिक सक्रिय थे। सन 1900 में किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी 'इंदुमती' में प्रकाशित हुई थी। कुछ विद्वानों ने हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903 ई.) को माना, जो प्रकाशित भी हुई। कौतूहल और कल्पना की दृष्टि से यह एक सुंदर कहानी है। इसी समय गिरिजा दत्त बाजपेयी की 'पंडित और पंडितायन' (1903ई.), बंग महिला (राजेंद्र वाला घोष) 'दुलाईवाली' (1960 ई.), वृन्दावन लाल वर्मा की 'राखिवंध भाई' (1909 ई.), मैथिलीशरण गुप्त 'नकली किला' (1909)। जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' (1911 ई.), राधिका रमण सिंह की 'कानों में

कंगना' (1912), विश्वम्बर नाथ कौशिक की 'रक्षाबंधन' (1913), चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' जी की 'उसने कहाँ था' (1915 ई.) कहानियाँ लिखी गई थी। इन कहानियों में 'दुलाईवाली', 'रक्षाबंधन', 'उसने कहाँ था' उच्चकोटि की कहानियाँ है। बंग महिला की 'दुलाईवाली' कहानी हिंदी की प्रथम आधुनिक कहानी मान्य हो चुकी है।



महत्वपूर्ण बिंदुः

दुलाईवाली कहानी का रचनाकाल सन् 1907 है। बंगमहिला हास्य-व्यंग्य के माध्यम से तत्कालीन समाज में महिला की दशा का चित्रण किया है। रेलयात्रा के माध्यम से यह दिखाया है कि बीसवीं शताब्दी के शुरुआती दशक में नई-नवेली दुल्हनों को सही से अपने ससुराल का पता भी मालूम नहीं होता था।

2. प्रेमचंदयुगीन हिंदी कहानी (1919- 1926) -

प्रेमचंद युग कहानी कला के विकास के लिए उत्तम युग था। इनके समय से ही शिक्षा लेनेवाली कल्पित लघु कहानी के स्थान पर सच्ची कहानी का प्रारम्भ हुआ।

➢ मुंशी प्रेमचंद -

प्रेमचंद जी पहले उर्दू में लिखते थे। उनका उर्दू में लिखा हुआ प्रसिद्ध कहानी संग्रह 'सोजे- वतन' वर्ष 1907 में प्रकाशित हुआ था, जो स्वातंत्र्य भावनाओं से ओत- प्रोत होने के कारण अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था। वर्ष 1916 में उनकी हिंदी में लिखित प्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' प्रकाशित हुई। 'मान सरोवर' इनकी जनप्रिय कहानी संग्रह है। इसके अतिरिक्त 'कफन', 'सप्त सरोज', 'प्रेम- पचिसि' आदि इनके कई कहानी संग्रह है। प्रेमचंद ने लगभग 300 कहानियाँ लिखी है। इनकी कहानियाँ घटना प्रधान चरित्र प्रधान सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आदि सभी प्रकार की है। भारतीय जीवन का कोई पक्ष या वर्ग नहीं है जो उनकी नजर से बच गया हो। 'पुस की रात', 'बूढ़ी काकी', 'सतरंज की खिलाड़ी', 'पंच परमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी' आदि प्रेमचंद की कुछ सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

➢ जयशंकर प्रसाद -

जयशंकर प्रसाद कहानीकार के रूप में विशेष महत्वपूर्ण है। इनके कहानी संग्रह 'छाया', 'आकाशद्वीप', 'आंधी' और 'प्रतिध्वनि' है। जयशंकर प्रसाद के कहानियों में जीवन की स्थूल समस्याओं का चित्रण करने के बजाए व्यक्ति में पनपनेवाले अंतद्वन्द संघर्ष का चित्रण मिलता है। ऐतिहासिक तथा भावात्मक कहानीकारों में प्रसाद सर्वप्रमुख है। 'आकाशद्वीप', 'पुरस्कार', 'ममता', 'सालवती' आदि इनकी ऐतिहासिक कहानियाँ है। भाषा शैली की दृष्टि से प्रसाद प्रेमचंद से अलग दूसरी सीमा पर स्थित है। इनकी कहानियों में

काव्यात्मकता उल्लेखनीय है।

➢ **सुदर्शन** -

सुदर्शन कहानी के क्षेत्र में प्रेमचंद के अनुयायी है। 'सुदर्शन सुधा', 'सुदर्शन सुमन', 'तीर्थयात्रा', 'गल्प मंजरी', 'चार कहानियाँ', 'परिवर्तन', 'नगिना', 'पनघट' आदि अनेक कहानी संग्रह है।

➢ **यशपाल** -

यशपाल शीर्षकोटी के प्रगतिवादी कहानीकार है। इनमें कला और वाद का अपूर्व समन्वय है। इनमें पीड़ा, सहानुभूति, मनोविश्लेषण, व्यंग सब कुछ मिलता है। 'अभिशप्त', 'ज्ञानदान', 'पिंजरे की उड़ान', 'तर्क का तूफान', 'फूलों का कुर्ता', आदि इनके कहानी संग्रह है।

➢ **भगवतीचरण वर्मा** -

भगवतीचरण वर्मा की कहानियाँ मानव जीवन की गंभीर स्थितियों का चित्रण करते है। मानवता का उत्थान-पतन, वेदना, नैतिकता, उच्च आदर्श इनकी कहानियों की विशेषताएँ है। 'खिलते फूल', 'इंष्टालमेंट', 'दो वाकें', आदि इनकी कहानी संग्रह है।

➢ **उपेन्द्रनाथ अश्क** -

अश्क के कहानियों में प्राय: कथानक और विश्लेषण की अधिकता मिलती है। समाज की रुधिओं तथा कुरीतियों पर इनका व्यंग्य तीखा है। इनके कहानी संग्रह 'पिंजरा', 'काले साहब', 'जुदाई की शाम की गीत' आदि।

'शरणागत' और 'कलाकार' ये दोनों वृन्दावनलाल वर्मा के दो प्रसिद्ध कहानी संग्रह है। कौशिक ने लगभग 300 कहानियाँ लिखी है इनमें 'ताई', 'अशिक्षित का हृदय', 'दुबे जी की चिट्ठियाँ', बहुत प्रसिद्ध है। इस युग के अन्य कहानीकारों में पाण्डेय वेचन शर्मा 'उग्र', पदुमलाल पन्नुलाल बख्शी, निराला, भगवती प्रसाद बाजपेयी, रायकृष्ण दास आदि के नाम भी उल्लेखनीय है।

3. प्रेमचंदोत्तर हिंदी कहानी (1936- 1960) -

इस काल में कहानी की पुरानी परम्पराओं के साथ नई परम्पराओं का उदय और विकास हुआ। इस काल की कहानियों ने जीवन और जगत के विविध पक्षों को अपनी परिधि में समेटने का प्रयास किया। इस काल में जहां एक ओर प्रगतिवादी कहानियाँ लिखी गई, वहीं दूसरी ओर मनोविश्लेश्णात्मक कहानियाँ व यथार्थवादी कहानियाँ भी लिखी गई। जैनेन्द्र कुमार तथा अज्ञेय इस समय के प्रसिद्ध कहानीकार है। इन कहानियों में विचारों की प्रधानता है। प्रेमचंद के बाद जैनेन्द्र कुमार आधुनिक हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार है। इनकी भाषा शैली सबमें नवीनता है। 'एक रात', 'स्पर्धा', 'निलाम', 'देश की राजकन्या', 'फांसी', 'कथामाला', 'पाजेब', आदि इनकी प्रमुख कहानी संग्रह है।

इलाचंद जोशी की कहानियों में मानव जीवन की विचित्र प्रवृतियों का चित्रण है।

'रोमांटिक और छाया', 'आहुति', 'दीवाली और होली' इनकी प्रसिद्ध कहानी संग्रह है। जैनेन्द्र की 'अपना पराया', 'मास्टर जी', 'एक रात' ऐसी ही कहानियाँ है। इस समय अन्य प्रमुख लेखक भगवतीचरण वर्मा, रांगेय राघव, वृंदावन वर्मा, राहुल सांकृत्यायन आदि है। विषय और शैली की दृष्टि से अज्ञेय, यशपाल प्रथम श्रेणी के कहानीकार है। अज्ञेय के कहानी संग्रह 'अमर बल्लरी', 'कोठरी की बात', 'परंपरा', 'जयदौल' आदि हैं।

4. स्वतंत्रोत्तर हिंदी कहानी (1960 से अब तक) -

स्वतन्त्रता के पश्चात लिखी गई कहानियों को स्वतंत्रोत्तर हिंदी कहानी कहा जाता है। ये कहानियाँ स्वतंत्र्योत्तर काल की हिंदी कहानी के विभिन्न रचनात्मक पक्षों और बदलावों की साक्षी रही हैं। वर्ष 1947 में देश को आजादी प्राप्त हुई। इसी के साथ हिंदी कहानी में नई अभिव्यक्तियाँ उभरी। आजादी के बाद कहानी साहित्य नई कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी, समकालीन कहानी, अकहानी आदि विभिन्न रूपों से वैविध्यशाली बना है, जिनका विवरण नीचे दिया गया है-

(क) नई कहानी -

वर्ष 1950 के पश्चात हिंदी कहानी के क्षेत्र में एक नए आंदोलन का प्रवर्तन हुआ, जिसे 'नई कहानी' आंदोलन की संज्ञा दी गई। इस आंदोलन के उन्नायकों- राजेंद्र यादव, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, मोहन राकेश, प्रभृति ने घोषित किया कि नई कहानी का लक्ष्य नए भाव बोध या आधुनिकता बोध पर आधारित जीवन के यथार्थ अनुभव का चित्रण करना है। नया कहानीकार न अतीत के आदर्शों से जुड़ा है और न ही भविष्य के स्वप्नों से। वह वर्तमान में भी केवल अपने भोगे हुए यथार्थ को अपनी दृष्टि का केंद्र बनाता है।

नई कहानी के प्रमुख कहानीकारों के नाम कुछ इस प्रकार हैं- मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, भीष्म सहानी, कृष्ण बलदेव वेद, रमेश बक्षी, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियम्बदा आदि।

(ख) सचेतन कहानी -

नई कहानी आंदोलन की ही प्रतिक्रिया एवं प्रतिद्वंद्विता में 'सचेतन कहानी' आंदोलन का प्रवर्तन हुआ। इसके प्रवर्तक थे डॉ. महीप सिंह है, जिन्होंने अपनी पत्रिका 'सचेतना' के माध्यम से इस आंदोलन को आगे ब ?ाया। सचेतन कहानी नई कहानी की अपेक्षा अधिक संतुलित एवं व्यापक दृष्टिकोण की परिचायक कहीं जा सकती है। सचेतन कहानी धारा के कुछ कहानीकारों के नाम इस प्रकार है- महीप सिंह, मनहर चौहान, रामकुमार भ्रमर, सुखवीर, बलराज पंडित, कुलभूषण, वेद राही, महरुन्निसा परवेज आदि।

(ग) समान्तर कहानी -

समान्तर कहानी आंदोलन के प्रवर्तक कमलेश्वर है, जिन्होंने वर्ष 1972 के आस-पास समांतर से उनका तात्पर्य कहानी को आम आदमी के जीवन की परिस्थितियों एवं समस्याओं के समांतर प्रतिष्ठित करने से है, इसलिए उन्होंने कहानी के क्षेत्र में समाज और जीवन को व्यापक रूप में ग्रहण करते हुए उसकी विभिन्न स्थितियों, विषमताओं एवं

विद्रूपताओं को अंकित करने का लक्ष्य घोषित किया। समांतर कहानी में व्यापक लक्ष्य के फलस्वरूप मध्यवर्गीय एवं निम्नवर्गीय समाज की विभिन्न स्थितियों, विषमताओं एवं समस्याओं का अंकन सूक्षमतापूर्वक हुआ है। समांतर कहानी का प्रचार-प्रसार मुख्यत: 'सारिका' पत्रिका के माध्यम से हुआ।

(घ) समकालीन कहानी -

इस कहानी आंदोलन के प्रवर्तक डॉ. गंगा प्रसाद 'विमल' है। इस कहानी में समकालीनता और आधुनिकता बोध पर अत्याधिक बल दिया गया है। समकालीन कहानीकार किसी विशेष आंदोलन से नहीं जुड़ी है।

(ङ) अकहनी -

इस कहानी आंदोलन में कुछ ऐसे कथाकार जुड़े जिन्होंने कहानी के स्वीकृत मूल्यों को स्वीकार न करके अपने स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा की। डॉ. नामवर सिंह और निर्मल वर्मा इस कहानी आंदोलन के प्रवर्तक है।

60 के बाद के कहानियाँ विषय और शैली की दृष्टि से पहले ही कहानियों से बहुत भिन्न है। इस समय की कहानियाँ विषय प्रधान न होकर विचार प्रधान शैली प्रधान होती है। इस समय की कहानीकारों में अपने जीवन और अनुभव को इनमें बांधने का यत्न किया। इसमें भोगा हुआ सत्य है। कुंठा, संत्रास इन कहानीकारों के कहानियों में आत्मविश्लेषण उल्लेखनीय है। इस समय की कहानीकारों में जगदीश गुप्त, कमलेश्वर, धर्मवीर भारती, शिवानी, अमृता प्रीतम, काशीनाथ सिंह, बच्चन सिंह, ममता कालियाँ, मोहन राकेश, सत्यवती मलिक, राजेंद्र यादव, महेंद्र सिंह आदि मुख्य है। उल्लेखनीय बात यह है कि इस युग में महिला कहानीकारों का प्रयास उल्लेखनीय है।



अपनी प्रगति जाँचें

प्रश्न 1 - आंचलिक उपन्यासकरों के बारे में चर्चा कीजिए।

प्रश्न 2 - कहानी का क्रमिक विकास कैसे हुआ था, चर्चा कीजिए।



12.5 सारांश

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य का सृजन किसी समाज पर ही आधारित होती है। किसी एक समाज के गुण, दोष आदि साहित्य में प्रतिफलित होती है। साहित्यकार साहित्य रचना करने के लिए अपने समाज, परिस्थिति के प्रति दायित्व होते है। उनके रचना से ही हमें उनके समाज के अवस्था का पता चलता है। हिंदी साहित्य में उपन्यास तथा

कहानी का उद्भव काल काफी पुरानी है। प्रथम उपन्यास 'परीक्षा गुरु' तथा प्रथम कहानी 'रानी केतकी की कहानी' से हिंदी उपन्यास तथा कहानी साहित्य का आरंभ हुआ था और तब से अब तक हिंदी साहित्य जगत में अनेकों कहानी और उपन्यास की रचना हुई और भविष्य में होता रहेगा।

हिंदी उपन्यास साहित्य निरंतर विकसित होता जा रहा है। आज समाज साहित्य के इसी विधा की अत्यधिक मांग है। दिन प्रतिदिन अनेक नए उपन्यास और लेखक उभर के आ रहे है। औपन्यासिक शैली तथा रूप विधान की क्षेत्र में नए नए प्रयोग हो रहे है। मूलत: हिंदी उपन्यास क्षेत्र में मुंशी प्रेमचंद का उल्लेखनीय स्थान एवं योगदान रहा है।

हिंदी कहानी हिंदी साहित्य की प्रमुख कथात्मक विधा है। हिंदी कहानी ने आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद, मनोविश्लेषणवाद आदि उपलब्धियां प्राप्त की है। आज हिंदी कहानी की लोकप्रियता अपने चरम शिखर पर है।

12.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर - प्रमुख आंचलिक उपन्यासकार-नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, देवेंद्र सत्यार्थी, शैलेश मटियानी, रामदरश मिश्र, राही मासूम रज़ा आदि। डॉ. रामदरश मिश्र- ''आंचलिक उपन्यास तो अंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है। उसका सम्बन्ध जनपद से होता है ऐसा नहीं, वह जनपद की ही कथा है।'' अधिक जानने के लिए कृपया इकाई में देखें।

प्रश्न 2 का उत्तर - आधुनिक हिंदी कहानी का आरंभ 20 वीं सदी में हुआ। पिछले एक सदी में हिंदी कहानी ने आदर्शवाद, आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद, मनोविश्लेषणवाद, आँचलिकता, आदि के दौर से गुजरते हुए सुदीर्घ यात्रा में अनेक उपलब्धियां हासिल की है। निर्मल वर्मा के वे दिन जैसे कहानी संग्रह साहित्य अकादमी से भी सम्मानित हो चुके हैं। इकाई में इसकी चर्चा विस्तारपूर्वक किया गया है।

12.6 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
3. लक्ष्मी लाल बैरागी, हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का इतिहास, संघी प्रकाशन, जयपुर।
4. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।



12.7 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. इलाचंद जोशी की कहानियों में किस प्रवृतियों का चित्रण है ?
2. 'इंदुमती' किसकी रचना है ?
3. '1916' में प्रेमचंद कि कौन सी कहानी प्रकाशित हुई ?
4. 'अकहनी' के प्रवर्तक कौन थे ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. प्रेमचंद युग के किसी उपन्यासकार के बारे में चर्चा कीजिए।
2. प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों के प्रमुख प्रवृतियाँ क्या क्या है ? तथा किसी पाँच महिला उपन्यासकारों के बारें में चर्चा कीजिए वर्णन कीजिए।
3. नई कहानी के कहानिकारों के नाम उल्लेख करते हुए उनके विशेषताओं को उल्लेख कीजिए।
4. स्वतंत्रोत्तर कहानियों के बारे लिखिए।

*** ***** ***

इकाई 13 निबंध एवं आलोचना

इकाई की रुपरेखा

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 निबंध साहित्य का उद्भव एवं विकास

13.3.1 निबंध का उद्भव

13.3.2 निबंध का विकास

13.4 आलोचना साहित्य का उद्भव एवं विकास

13.4.1 आलोचना का उद्भव

13.4.2 आलोचना का विकास

13.5 सारांश

13.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

13.6 अधिक जानने के लिए पढ़े

13.7 अभ्यास प्रश्न

13.1 उद्देश्य

इस अध्याय से आपको –

- निबंध के उद्भव के बारे में ज्ञान प्राप्त होगी।
- निबंध सम्बन्धित हिंदी साहित्य के नए आयाम की जानकारी हासिल होगी।
- निबंध के अर्थ के बारे में ज्ञान प्राप्त होगी।
- निबंध साहित्य का उद्भव एवं विकास के बारे में जानकारी प्राप्त होंगे।
- आलोचना साहित्य के उद्भव के बारे में ज्ञान प्राप्त होंगे।
- आलोचना साहित्य के विकास के बारे में जानकारी प्राप्त होंगे।

13.2 प्रस्तावना

पाठ्यक्रम के इस इकाई में हम पिछली दो अध्यायों के तरह आधुनिक हिंदी साहित्य के अन्य दो गद्य विधाओं के बारे में जानेंगे। यह दो विधाएँ है- निबंध और आलोचना। निबंध गद्य लेखन की एक विधा है, लेकिन इस शब्द का प्रयोग किसी विषय की तार्किक और बौद्धिक विवेचना करने वाले लेखों के लिए भी किया जाता है। निबंध के

पर्याप्त रूप में संदर्भ, रचना और प्रस्ताव का भी उल्लेख किया जाता है, लेकिन साहित्यिक आलोचना में सर्वाधिक प्रचलित शब्द निबंध ही है।

वहीं, आलोचना से तात्पर्य किसी वस्तु अथवा विषय की, उसके लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, उसके गुण- दोषों एवं उपयुक्ता का विवेचन करना है। सामान्यत: आलोचना का अर्थ दोष दर्शन से ही लिया जाता है, जबकि आलोचना का अर्थ गुण- दोष दोनों पर प्रकाश डालना है।

अब हम इन दोनों विधाओं के बारे में चर्चा करेंगे-

13.3 निबंध साहित्य का उद्भव एवं विकास

हिंदी निबंध गद्य साहित्य की ऐसी विधा है, जिसमें लेखक किसी विषय के संबंध में अपने विचारों को स्वच्छन्द रूप से साहित्यिक शैली में व्यक्त करता है। निबंध एक ऐसी कलाकृति है, जिसके नियम लेखक द्वारा ही आविष्कृत होते हैं। निबंध में सहज, सरल और आडंबरहीन ढंग से व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है। इसमें लेखक बिना किसी संकोच के अपने पाठकों को अपने जीवन-अनुभव को सुनता है।

निबंध का साधारण अर्थ है अच्छी तरह गठा या बंधा हुआ वह विचारपूर्ण, विवरणात्मक और विस्तृत लेख, जिसमें किसी विषय के सब खंडों का मौलिक और स्वतंत्र रूप से विवेचन किया गया है। निबंध गद्य कि मूल विधा है, जो आधुनिक काल की देन है। निबंध व्यक्ति और समाज की मानसिक चेतना एवं भावानुभूति की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। निबंध में व्यक्ति अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व निजीपन अपने दृष्टिकोण का प्रतिपादन अपने निजी ढंग से कर सकता है। निबंध वैचारिकता एवं आत्म प्रकाशन का निष्कपट, प्रभावशाली और रोचक माध्यम है।

गणपतिचन्द्र गुप्त के अनुसार निबंध पाँच प्रकार हैं- विचारात्मक निबंध, भावात्मक निबंध, वर्णनात्मक निबंध, विवरणात्मक निबंध, आत्मपरक निबंध।

13.3.1 निबंध का उद्भव

हिंदी साहित्य में निबंध का समुचित सूत्रपात राष्ट्रीय जागरण के उषाकाल भारतेन्दु के समय में हुआ। एक तो अब गद्य का विकास हो चुका था और दूसरे मुद्रण- यंत्र तथा समाचार- पत्रों के प्रचलन ने साहित्य के इस अंग को प्रोत्साहन दिया। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु- युग के साहित्यकार पर विविधमुखी दायित्व था जिसकी पूर्ति गद्य साहित्य के अन्य अंगों की अपेक्षा निबंध के द्वारा सहज तथा सबल रूप में हो सकती थी।

13.2.2 निबंध का विकास

हिंदी निबंध पश्चिम की देन है। हिंदी निबंधों का उद्भव व विकास अंग्रेजी निबंधों के आधार पर हुआ है। हिंदी निबंध के विकास क्रम को मुख्यत: चार भागों में विभक्त किया गया है–

1. भारतेन्दु युग
2. द्विवेदी युग
3. शुक्ल युग
4. शुक्लोत्तर युग

अब हम इन पर अध्ययन करेंगे–

1. भारतेन्दु युग –

भारतेन्दु युग का उदय राष्ट्रीय जागरण की नव–सांस्कृतिक और राजनीतिक चेतना के उन्मेषकाल में हुआ। उस युग के साहित्य का दायित्व निश्चित रूप से अनेकमुखी था। जहां उसे एक ओर सामाजिक सुधार करना था, वहाँ दूसरी ओर सांस्कृतिक चेतना का समुचित विकास करना भी उसे अभीष्ट था। एक ओर उसे शिक्षा का अधिकाधिक प्रसाद करना था तो दूसरी ओर साहित्य के विविध खंडों को पुष्ट करना वांछनीय है।

भारतेन्दु युग से ही हिंदी निबंध की विकास यात्रा का प्रारम्भ हुआ था। इससे पूर्व के लिखे निबंधों में निबंध शैली के गुण विद्यमान नहीं थे। इस युग के प्रमुख निबंधकार के बारें में नीचे चर्चा किया गया है–

- **भारतेन्दु हरिश्चंद्र** –

डॉ. शिवदान सिंह चौहान ने 'भारतेन्दु' को हिंदी का प्रथम निबंधकार माना है। भारतेन्दु ने 'कवि- वचन सुधा' तथा 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में साहित्यिक निबंध लिखे। भारतेन्दु के प्रसिद्ध निबंध हैं– 'लेवी प्राण लेवी', 'अंग्रेज स्तोत', 'कंकड़ स्तोत', 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन', 'पांचवें पैगंबर', 'दिल्ली दरबार दर्पण', 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?' इनके निबंधों में तत्कालीन समस्याओं का स्पष्ट प्रतिबिंब निर्देशित होता है।

- **बालकृष्ण भट्ट** –

हिंदी निबंध के सशक्त हस्ताक्षरों में से एक हैं। ये भारतेन्दु युग के प्रमुख निबंधकार हैं। डॉ. श्री कृष्णलाल ने बालकृष्ण भट्ट को हिंदी का प्रथम निबंधकार माना है। इन्होंने 'हिंदी प्रदीप' पत्रिका का सम्पादन कार्य किया। इनके निबंधों में मार्मिक हास्य विनोद रहता था। भट्ट के निबंधों में भरतेंदुयुगीन निर्भीकता, स्वच्छन्दता, विनोदशीलता विद्यमान है।

बालकृष्ण भट्ट के निबंध 'हिंदी प्रदीप' में प्रकाशित हुए। इनके निबंधों का संकलन दो भागों में हुआ है– 'साहित्य सुमन' और 'भट्ट निबंधमाला'। इन्होंने लगभग 1000 निबंध लिखे हैं।

- **पंडित प्रतापनारायण मिश्र** –

प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' पत्रिका का सम्पादन कार्य किया। इनके निबंध मनोरंजन व व्यंग प्रधान थे। मनुष्य के अंगों को लेकर इन्होंने व्यंग लेख लिखे हैं। भाषा में स्खलन शैली में धनरूप और ग्रामीणता, चंचलता तथा उछल–कूद मिश्र के विशषताएं हैं।

- **बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'** –

प्रेमघन के निबंध वर्णनात्मक, भावात्मक और विचारात्मक कोटि के हैं। इन्होंने 'आनंद कादंबिनी' और 'नागरी नीरद' दो पत्रिकाओं का सम्पादन कार्य किया। इसी में इनके निबंध प्रकाशित होते थे। इनके कुछ प्रमुख निबंध कुछ प्रकार हैं– 'बनारस का बुढ़वा मंगल', 'दिल्ली दरबार में मित्रमंडली के यार' आदि ।

- **ठाकुर जगमोहन सिंह** –

जगमोहन सिंह ने अपने निबंधों में ग्रामीण प्रकृति का चित्रण मनोवैज्ञानिक तरीके से किया है। इन्होंने मुख्यत: वर्णनात्मक प्रकार के निबंध लिखे हैं। सिंह के निबंध काव्यात्मक होते थे।

इनके अतिरिक्त लाला श्रीनिवासदास, अंबिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, ज्वाला प्रसाद आदि भी इस युग के उल्लेखनीय निबंधकार है।

2. द्विवेदी युग –

इस युग समस्त साहित्य चेतना महावीर प्रसाद द्विवेदी में समाहित है। उनका सबसे पहला कार्य है भाषा का संस्कार तथा परिष्कार। उन्होंने भाषा के व्याकरण प्रयोग तथा हिंदी विराम चिन्हों के उपयोग पर अत्यधिक बल दिया। द्विवेदी को नैतिकता प्रिय होने के कारण उस युग में नैतिक निबंध अधिक लिखे गए हैं। इस युग में पत्रकारिता की स्वच्छंदता कम हो गई और निबंधकार जनसामान्य की अपेक्षा मध्य वर्ग के शिष्ट एवं शिक्षित समाज के अधिक समीप आ गया।

भारतेन्दु युग में पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से निबंध साहित्य की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी। द्विवेदी युग में व्यक्तिव्यंजक निबंधों की परंपरा का ह्रास लक्षित होता है। द्विवेदी युग का नामकरण महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के नाम पर हुआ । इन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन कार्य वर्ष 1903 में संभाला था । 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से इन्होंने लेखकों की भाषा को संस्कारित व परिमार्जित किया, जिसका प्रभाव लेखकों पर पड़ा। इनके आदर्श 'बेकन' थे। इन्होंने बेकन के निबंधों का अनुवाद 'बेकन विचार रत्नावली' के रूप में किया।

इस युग के कुछ प्रमुख निबंधकार इस प्रकार हैं–

- **महावीरप्रसाद द्विवेदी** –

द्विवेदी के बहुसंख्यक निबंध परिचयात्मक या आलोचनात्मक टिप्पणियों के रूप में है। 'म्युनिसिपैलिटी के कारनामे' निबंध में उनकी व्यंग शैली का रूप देखा जा सकता है।

आत्मनिवेदन, प्रभात, सुतापराधे जनकस्य दंड, वैदिक देवता आदि निबंधों में व्यक्तित्व व्यंजना के तत्व मिलते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने, महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबंधों को 'बातों का संग्रह' कहा है। महावीर प्रसाद द्विवेदी की साहित्य सेवा से प्रभावित होकर 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने उन्हें 'आचार्य' की उपाधि से विभूषित किया था।

- **माधव प्रसाद मिश्र** -

माधव प्रसाद मिश्र के निबंध भावनापूर्ण हैं। एतदर्थ उनमें सरसता, माधुर्य है। उनके त्योहारों और तीर्थस्थानों पर लिखे गए निबंध विद्वतापूर्ण और मार्मिक हैं। इन्होंने धृति और सत्य जैसे विषयों पर गंभीर शैली में लिखा हैं। 'माधव मिश्र निबंध माला' के नाम से इनका निबंध संग्रह छप चुका है। मिश्र 'वैश्योपकारक' और 'सुदर्शन' के संपादक रहे है। इनके निबंधों का संग्रह 'माधव मिश्र निबंधमाला' नाम से प्रकाशित हुआ। पंडित माधव प्रसाद मिश्र के निबंध विशेष रूप से त्योहार-पर्व, तीर्थ-स्थान, देश-प्रेम भारतीय संस्कृति से संबन्धित हैं। इनकी शैली बहुत ही परिष्कृत है। इनके कुछ उल्लेखनीय निबंध है- 'सब मिट्टी हो गया', 'बेवर का भ्रम' आदि।

- **श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी** -

चंद्रधर शर्मा गुलेरी इस युग के प्रसिद्ध निबंधकार हैं। इनकी विचारधारा में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक चेतना, प्रगतिशील चिंतन, परिष्कृत व्यंग और सामाजिक विषयों के प्रति जागरूकतापूर्व प्रभाव विद्यमान है। इनके निबंधों में उल्लेखनीय है- 'कछुवा धर्म', 'मारेसि मोहि कुठाँव', 'संगीत पुरानी हिंदी', 'अमंगल के स्थान' आदि। इनमें निबंधों की भाषा पौढ़ रही है।

- **गोविंद नारायण मिश्र** -

गोविंद नारायण मिश्र ने साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर कतिपय निबंध प्रस्तुत किए है, जो 'गोविंद' निबंधावली में संग्रहीत हैं। इनके गद्य विधान को आचार्य शुक्ल ने 'सायास अनुप्रास' में गूँथे शब्दों के गुच्छों का अटाला कहा है।

- **बालमुकुंद गुप्त** -

बालमुकुंद गुप्त हिंदी साहित्य में 'शिवशंभू के चिट्ठे' तथा 'चिट्ठे और खत' के लिए प्रसिद्ध हैं। ये चिट्ठे तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन को संबोधित करके लिखे गए हैं। बालमुकुंद गुप्त ने 'कर्जन' के भारत-विरोधी कारनामों पर ओजपूर्ण, तीखी एवं व्यंग्यात्मक शैली में प्रहार किया है। इनके अतिरिक्त शुकदेवबिहारी मिश्र, श्यामबिहारी मिश्र, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी आदि उल्लेखनीय हैं।

2. शुक्ल युग -

हिंदी निबंध के तृतीय चरण को शुक्ल युग की संज्ञा दी गई है। आचार्य शुक्ल के निबंध क्षेत्र में आने से निबंधों को एक नया आयाम एवं नई दिशा प्राप्त हुई। यह युग

गद्यभाषा के व्यवस्थित और परिनिष्ठित हो जाने के कारण भावोन्मेष के लक्ष्य को लेकर चला है। सामनान्तर छायावादी काव्य आंदोलन के प्रवाह के स्पर्श से भी यह बच नहीं पाया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने स्वच्छंदतावाद की कल्पना-प्रवण भाषा को हिंदी की परंपरा से असंबंध मानते हुए लेखकों से आग्रह किया है कि अपने विचारों को हिंदी कि विशिष्ट प्रकृति की परिधि में ही अभिव्यक्त करें। आचार्य शुक्ल के निबंध में विचारों का गूढ- गुम्फित विन्यास, पूर्वापर वाक्यों और अनुच्छेदों का जनक- जन्य संबंध, व्यंग-विनोद की अनुरंजकता, भावों का रसात्मक विनियोग, भाषा का विषयानुरूप प्रयोग प्राप्त होता है।

इस युग के कुछ उल्लेखनीय निबंधकार इस प्रकार है-

(क) आचार्य रामचंद्र शुक्ल -

आचार्य शुक्ल हिंदी के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार माने जाते हैं। इन्हें हिंदी निबंध का आदर्श माना जाता है। वे साधना-सम्पन्न शिल्पी हैं। उनमें सृजक की सम्पूर्ण निष्ठा है। शुक्ल जी का आलोचनात्मक निबंध है 'कविता क्या है'? शुक्ल जी के निबंध- संग्रह 'विचारवीथी', 'चिंतामणि भाग-1' एवं 'चिंतामणि भाग-2' हिंदी जगत की अमूल्य निधि है। यह रामचन्द्र शुक्ल का प्रथम प्रकाशित निबंध साहित्य है, जो 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ। उनके निबंध तीन प्रकार के हैं :

- मनोविकार संबंधी भाव और मनोविकार, श्रद्धा और भक्ति, करुणा, घृणा, लज्जा और ग्लानि, लोभ और प्रीति, ईर्ष्या, क्रोध आदि।
- सैद्धांतिक समीक्षा संबंधी कविता क्या है, साधारणीकरण और व्यक्ति- वैचित्र्यवाद, काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था।
- व्यवहारिक समीक्षा संबंधी जायसी ग्रंथावली की भूमिका, भ्रमरगीत सार की भूमिका।

(ख) माखनलाल चतुर्वेदी -

माखनलाल चतुर्वेदी ने भावुकतामयी शैली में निबंधों की रचना की है। इनके निबंध 'साहित्य देवता' में संग्रहीत है। निबंधों की भाषा शैली लक्षणिक व प्रतीकात्मक है।

(ग) पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी -

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का भी हिंदी निबंध में उत्कृष्ट स्थान है। इनके निबंधों में मौलिक विचार व नूतन शैली के दर्शन होते हैं। इनके कुछ निबंध संग्रह कुछ इस प्रकार है : 'पंचपात्र', 'विश्व साहित्य', 'मकरंद बिन्दु', 'प्रबंध पारिजात', 'त्रिवेणी', 'कुछ और कुछ', 'यात्री' आदि। इनके निबंधों में भावात्मकता के भी दर्शन होते हैं।

(घ) शांतिप्रिय द्विवेदी -

शांतिप्रिय द्विवेदी ने निजी जीवन और व्यक्तिगत समस्याओं पर निबंध लिखने के

अतिरिक्त 'कवि और काव्य', 'साहित्यिकी प्रभृति' आदि आलोचनात्मक निबंध भी लिखे है। इन निबंधों में भावुकता एवं आत्मीयता की प्रधानता है।

(ङ) पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' -

उग्र के भावात्मक निबंधों की संख्या अधिक है। 'बुढ़ापा', 'गली' आदि इनके भावात्मक निबंध हैं। इनके निबंधों की भाषा अत्यंत चित्रात्मक, गतिशील और नाटकीय तीव्रता से युक्त है।

इस युग की महान उपलब्धि आचार्य शुक्ल जी रहे हैं, जिनके नाम पर ही इस युग का नाम शुक्ल युग रखा गया।

4. शुक्लोत्तर युग -

शुक्ल ने वैचारिक व मनोविकार संबंधी निबंध को उत्कर्ष की चरम ऊंचाई पर पहुंचा दिया था। इस युग में निबंध अन्य दिशाओं की ओर भी अग्रसर रहा, जैसे- विचारात्मक निबंध, समीक्षात्मक निबंध, व्यक्तित्वव्यंजक निबंध आदि।

इस युग के कुछ निबंधकारों के नाम नीचे दिये गए है-

1. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी -

इस युग के एक प्रमुख निबंधकार का नाम है- आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी। द्विवेदी को इस युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार कहे जाते है। इनके प्रकाशित निबंध संग्रह इस प्रकार हैं- 'कुटज' (1964), 'कल्पलता' (1951), 'अशोक के फूल', 'विचार प्रवाह' (1959), 'विचार और वितर्क', 'आलोक पर्व' (1972) आदि। इनके निबंधों में अध्ययन क्षेत्र की व्यापकता एवं चिंतन की गंभीरता के साथ- साथ व्यक्ति और विषय का संतुलित समन्वय है। द्विवेदी के निबंधों का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है।

2. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी -

वाजपेयी के निबंध संग्रहों में : 'हिंदी साहित्य 20वीं शताब्दी', 'आधुनिक साहित्य', 'नया साहित्य, नए प्रश्न' आदि है। दुलारे मूलत: विचारक व आलोचक हैं। अधिकांशत: इन्होंने आलोचनात्मक निबंध लिखे हैं। इनके निबंध विचारात्मक निबंध के वर्ग में आते हैं।

3. डॉ. नगेन्द्र -

नगेंद्र शुक्लोत्तर युग के प्रमुख निबंधकार हैं। इनके निबंध संग्रह इस प्रकार हैं- 'विचार और विश्लेषण' (1955), 'साहित्य की झाँकी' आदि। इनके निबंध विषय प्रधान ही रहे हैं। कुछ निबंधों में व्यक्तित्व के दर्शन भी होते हैं। गूढ़-से-गूढ़ विषय को भी इन्होंने बड़े रुचिपुर्ण तरीके से लिखा है।

4. रामधारी सिंह 'दिनकर' -

दिनकर के निबंधों में उनका विचारक पक्ष ही उभरकर आया है। 'अर्धनारीश्वर',

'मिट्टी की ओर', 'रेती के फूल', 'हमारी सांस्कृतिक एकता', 'प्रसाद, पंत और मैथिलीशरण', 'राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय साहित्य' आदि उनके अनेक निबंध-संग्रह हैं।

5. विद्यानिवास मिश्र -

विद्यानिवास मिश्र ललित निबंधकार रहे हैं। इनके निबंधों में भारतीयता के प्रति स्नेह व आस्था की झलक मिलती है। उन्होंने अपने निबंधों के माध्यम से विभिन्न मानसिक स्थितियों की व्यंजना करते हुए विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक स्थितियों का अंकन प्रभावोत्पादक शैली में किया है। उनके निबंधों में लोकतत्व का समावेश है, जो कि विशेष रूप से भोजपुरी लोकजीवन निबंधों में दिखाई देता है। मिश्र के प्रमुख रचनाएँ कुछ इस प्रकार है : 'चितवन की छाह' (1953), 'तुम चंदन हम पानी' (1957), 'आँगन की पंछी', 'मैंने सिल पंहुचाई', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'हल्दी दूब', 'कंटीले तारों के आर- पार', 'कौन तू फुलवा बीनन हारी', 'बसंत आ गया', 'कदम की फुली दाल' आदि ।

इनके उपरांत जैनेन्द्र कुमार, प्रभाकर माचवे, कुबेरनाथ राय, प्रभाकर और हरिशंकर परसाई आदि इस युग के जनप्रिय निबंधकार है।



महत्वपूर्ण बिंदु -

प्रबंध और निबंध- प्रबंध और निबंध ये दोनों शब्द का मूल संस्कृत शब्द 'बंध' है। जिसका अर्थ बंधन है। बंध शब्द में 'प्र' उपसर्ग के लगाने से प्रबंध शब्द बना। 'प्र' उपसर्ग जब शब्द में जोड़ा जाता है। उसका अर्थ 'विशेष' रूप से होता है। जैसे- प्रवचन आदि, अर्थात प्रबंध एक ऐसी रचना है, जहां विषय को युक्ति तर्क, तथ्य प्रमाण आदि से विशेष रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रबंध गद्य में लिखा जाता है। प्रबंध में आदि से अंत तक शृंखलित और गंभीर विचार मिलता है।

निबंध में 'नि' उपसर्ग बंध के सामने बैठा है। 'नि' अनुपस्थिति है या अभाव का सूचक होता है। असमीया भाषा के आलोचक डॉ. गोविंद प्रसाद शर्मा के अनुसार निबंध का विषय दिमाग की चिंता पर आधारित न होकर मनोभाव पर आधारित होता है। भावों की प्रस्तुति या विकास आदि मन की गति पर आधारित हो, उसे निबंध कहा जाना चाहिए। ऐसे लेखों में तर्क या चिंता का बंधन नहीं होता है, चिंता का युक्तिपूर्ण वंधन अनुपस्थित होता है। निबंध भी गद्य में ही लिखा जाता है।

13.4 आलोचना साहित्य का उद्भव एवं विकास

13.4.1 आलोचना का उद्भव

हिंदी आलोचना का इतिहास रीतिकाल से थोड़ा पहले प्रारंभ होता है। ऐसा माना जाता है कि 'हित तरंगिणी' के लेखक कृपाराम हिंदी के पहले काव्यशास्त्री थे, लेकिन हिंदी में 'काव्य रीति' का सम्यक समावेश सबसे पहले आचार्य केशव ने ही किया, जिसका अनुकरण परवर्ती रीतिकालीन आचार्यों और लक्षणकारों ने किया। हिंदी में वार्ता- ग्रन्थों, भक्तमालों और उनके टीका- ग्रन्थों के रूप में आलोचना की जो प्राचीन परंपरा मिलती है, वह नि:संदेह हिंदी आलोचना का प्रवेश द्वार है, लेकिन आचार्यत्व और कवित्व के एकीकरण के इस दौर में आलोचना का लक्षण, उदाहरण और टीकाओं तक ही सीमित थी।

13.4.2 आलोचना का विकास

गद्य की अन्य विधाओं की तरह आधुनिक हिंदी आलोचना का विकास भारतेन्दु युग से हुआ। इससे पहले भी हिंदी में संस्कृत काव्य आलोचना उपलब्ध थी। इस ग्रन्थों से आधुनिक हिंदी आलोचना का द्वार खुला। हिंदी आलोचना के विकास को चार युगों में विभक्त कर सकते हैं-

1. भारतेन्दु युग
2. द्विवेदी युग
3. शुक्ल युग
4. शुक्लोत्तर युग

अब हम इन युगों पर चर्चा कीजिए:

1. भारतेन्दु युग -

भारतेन्दु युग में पत्र पत्रिकाओं की प्रकाशन की साथ ही आधुनिक हिंदी आलोचना का जन्म हुआ। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने हिंदी आलोचना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन्होंने 'नाटक' नामक आलोचनात्मक ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ नाट्यशास्त्र संबंधी सैद्धांतिक आलोचना से संबंध रखता है। इन पत्र पत्रिकाओं में कवि वचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन, हिन्दी प्रदीप आदि प्रमुख है, जिनसे आलोचना साहित्य का विकास हुआ था। 'हिंदी प्रदीप' में अपेक्षाकृत गंभीर आलोचनाएँ प्रकाशित होती थी।

भारतेन्दु ने जिस प्रकार अन्य गद्य विधाओं के विकास में योगदान दिया, उसी प्रकार आलोचना के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने 'नाटक'

नामक एक ग्रंथ भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' के अनुकरण पर लिखा। सैद्धांतिक आलोचना का सूत्रपात भारतेन्दु की 'नाटक' रचना से ही होता है।

इस ग्रंथ की रचना 1883 ई. में हुई । भारतेन्दु ने अपने 'नाटक' विषयक लेख में नाटकों की प्रकृति, समसामयिक जनरुचि और प्राचीन नाट्यशास्त्र की प्रासंगिकता पर विचार किया, इसलिए भारतेन्दु को हिंदी साहित्य का प्रथम आलोचक माना जा सकता है। इस काल में आलोचना के तीन रूप विद्यमान थे : सैद्धांतिक आलोचना, टीका अथवा भाष्य और इतिहास ग्रन्थों में लिखे हुए कवि परिचय।

भारतेन्दु के अतिरिक्त जगन्नाथ प्रसाद कृत 'छंद प्रभाकर', कविराज मुरारीदान कृत 'जसवंत जसोभूषण' और प्रताप नारायण सिंह कृत 'रस कुसुमाकर' आदि ग्रंथ भी सैद्धांतिक आलोचना के ग्रंथ है। उस काल में लिखे गए शिवसिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज' एवं ग्रियसन के इतिहास ग्रंथ में भी मिलती है। भारतेन्दु काल के समालोचकों में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेम घन', बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र के नाम लिए जा सकते हैं।

2. द्विवेदी युग –

भारतेन्दु के बाद महावीर प्रसाद द्विवेदी का प्रभाव आलोचना साहित्य जगत में सबसे अधिक रहा। महावीर प्रसाद को हिंदी के प्रथम लोकवादी आचार्य थे और युग बोध और नवीनता के पोषक थे। आचार्य द्विवेदी ने जहां 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन के द्वारा आलोचना की भाषा का रूप सुस्थिर किया, वहीं बाबू श्यामसुंदर दास ने आलोचना के आवश्यक उपादान एकत्र किए तथा उन्हें व्यवस्थित और संयोजित किया। द्विवेदी युग में सैद्धांतिक और परिचयात्मक आलोचना के साथ साथ तुलनात्मक, मूल्यांकनपरक, अन्वेषण और व्याख्यात्मक आलोचना की भी आरंभ हो चुकी थी। द्विवेदी युग में आलोचना का रूप भारतेन्दु युग की तुलना में अधिक उभर कर आया था। एक ओर तो संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकरण पर सैद्धांतिक आलोचना के ग्रंथ लिखे है, जैसे : लाला भगवानदीन कृत 'अलंकार मंजूषा', जगन्नाथ प्रसाद भानु कृत 'काव्य प्रभाकर' आदि, दूसरी ओर तुलनात्मक आलोचना का सूत्रपात पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारी' और 'सादी' (फारसी के कवि) की तुलना करके किया।

आचार्य द्विवेदी के 'कवि और कविता' और 'कविता तथा कवि कर्तव्य' निबंधों में उनकी काव्य विषयक धारणायें दिखाई देती है। द्विवेदी युग के अन्य प्रमुख आलोचक मिश्रबंधु, पद्मासिंह शर्मा तथा पंडित कृष्ण बिहारी मिश्र है।

3. शुक्ल युग –

हिन्दी आलोचना को आलोचना शास्त्र के रूप में व्यवस्थित, गांभीर्य और समृद्ध करने का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को जाता है। उनसे पूर्व जिस तुलनात्मक आलोचना का सूत्रपात हुआ था, उसमें न तो कोई आदर्श था और न ही कोई

सिद्धांत। आलोचक अपने व्यक्तिगत पूर्वाग्रह के कारण किसी भी कवि को श्रेष्ठ या हीन सिद्ध करने का प्रयास करते थे। आचार्य शुक्ल ने सैद्धांतिक आलोचना को भारतीय साहित्य चिंतन परंपरा और पाश्चात्य साहित्य परंपरा के समन्वय से समृद्ध किया। आचार्य शुक्ल की आलोचना के तीन रूप हैं– सैद्धांतिक, ऐतिहासिक एवं व्यवहारिक। सैद्धांतिक आलोचना के अंतर्गत उनके 'चिंतामणि' तथा 'रस मीमांसा' आते है। इतिहास के क्षेत्र में शुक्ल का दृष्टिकोण पर्याप्त वैज्ञानिक है। तुलसीदास, सूरदास, जायसी आदि ग्रन्थों की भूमिकाएँ व्यवहारिक समीक्षा के उदाहरण हैं।



महत्वपूर्ण बिंदु –

'रस मीमांसा' रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखी गई एक आलोचनात्मक कृति है। इस रचना का प्रकाशन 1949 में हुआ था। इस कृति में 5 अध्याय हैं, जोकि कुल 5 अध्याय में विभाजित हैं। ये अध्याय काव्य, विभाव, भाव, रस तथा शब्द शक्ति इन पांच भागों में विभाजित हैं।

शुक्ल ने साहित्यिक आलोचना और इतिहास के लिए साहित्येतर और उपयोगितावादी मानदंडों को स्वीकार नहीं किया, उन्होंने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' और 'चिंतामणि' के निबंधों के साथ ही सूरदास, जायसी और तुलसीदास के काव्य के व्यवस्थित मूल्यांकन की प्रक्रिया में कुछ बीज शब्दों का निर्माण किया, जो आलोचनात्मक प्रतिमान के रूप में स्थापित हुए, जैसे : 'लोकमंगल की साधना', 'रस सिद्धान्त', 'प्रबंधत्मकता', 'हृदय की मुक्तावस्था', 'आनंद की साधनावस्था', 'आनंद की सिद्धावस्था' आदि।

शुक्ल के परंपरा को आगे बढाने का श्रेय चंद्रवली पाण्डेय, पंडित कृष्ण शंकर शुक्ल, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और रमाशंकर शुक्ल जैसे आलोचकों को दिया जाता है।

4. शुक्लोत्तर युग –

आचार्य शुक्ल हिंदी आलोचना के प्रमुख थे, किन्तु शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना का विकास शुक्ल जी की मान्यताओं के साथ टकराहट के साथ शुरू हुआ। हिंदी आलोचना साहित्य को शुक्ल ने जो स्थान दिया, उसी को आगे बढ़ाया नंददुलारे वाजपेयी, हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ. नगेंद्र ने।

नंददुलारे वाजपेयी ने न ही केवल शुक्ल के सीमाओं का उद्घाटित किया था, बल्कि छायावादी काव्य के संदर्भ में उनके दृष्टिकोण को भी नवीन साहित्यिक संवेदना के उपयुक्त भी नहीं माना। वाजपेयी का शुक्ल के छायावादी काव्य को लेकर ही मतभेद था और इनका साहित्यिक देन छायावाद, राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करना

है और साथ ही उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि छायावाद की मूल प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। छायावादोत्तर काल में इनके कई समीक्षा ग्रंथ प्रकाशित हुए, जो कुछ इस प्रकार है- 'आधुनिक साहित्य', 'नया साहित्य', 'नए प्रश्न', 'कवि निराला', 'प्रकीर्णिका', 'राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध' आदि।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के आलोचनात्मक मत शुक्ल के लोकमंगल वाद से काफी मेल क्योंकि साहित्य और जन जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण सम्पूर्ण रूप से मानवतावादी थे। द्विवेदी के कुछ समीक्षात्मक ग्रंथ कुछ इस प्रकार है- 'सुर साहित्य' (1940), 'हिंदी साहित्य की भूमिका' (1940), 'कबीर' (1942), 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' (1932), 'सहज साधना' (1963) आदि।

डॉ. नगेंद्र ने व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक समीक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त कार्य किए है। डॉ. नगेंद्र को रसवादी आलोचक माना जाता है। उनके रचना रस-सिद्धान्त में रस की सांगोपांग विवेचना करते हुए उन्होंने इसे पुन: प्रतिष्ठित करने का पांडित्यपूर्ण प्रयास किया हैं। 'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ (1962), 'सुमित्रानंदन पंत' (1938), 'साकेत- एक अध्ययन' (1939), 'रीतिकाल की भूमिका' (1949), 'आधुनिक नाटक' (1949), 'विचार और अनुभूति' (1944), 'आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ' (1951) आदि उनके उल्लेखनीय आलोचनात्मक ग्रंथ है।

इसके उपरांत हिंदी आलोचना जगत का अन्य एक धारा है समकालीन हिंदी आलोचना। समकालीन का अर्थ है : 'एक समय में रहने या होने वाला' अर्थात एक समय में घटित होनेवाली। समकालीन आलोचना की विशेषता यह है कि वह रचना या कृति को उसकी समग्रता में देखने व परखने की पक्षधर रही है। समकालीन आलोचना अस्तित्ववाद की सीमाओं का अतिक्रमण करती है। साथ ही समाज और सौन्दर्य की नवीन धाराणाओं का स्वागत तथा उनका समर्थन करती है।

समकालीन आलोचना में काफी कुछ विविधताएँ मिलती है, आलोचकों में अपने आग्रह, विचार और विविधता के बावजूद यह कोशिश की है कि अंतर्वस्तु और रचना-शिल्प की दृष्टि से एक समवेशी और समेकित आलोचना दृष्टि का विकास किया है। इस समय के आलोचक कुछ इस प्रकार है- सुधीश पचौरी के 'नई कविता का वैचारिक आधार', 'कविता का अंत', 'उत्तर आधुनिकता और उत्तर संरचनवाद', 'आधुनिक परिदृश्य', नामवर सिंह के 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ' (1954), 'छायावाद' (1955), 'इतिहास और आलोचना' (1957), 'कहानी: नई कहानी' (1964), निर्मला जैन के 'जहाज का पंछी', 'जिंदगीनामा', 'कुरु- कुरु स्वाहा', विश्वनाथ त्रिपाठी के 'तुलसीदास', 'मीरा का काव्य' आदि। इनके उपरांत मलयज, परमानंद श्रीवास्तव, नंदकिशोर नवल, अशोक वाजपेयी तथा मैनेजर पाण्डेय आदि प्रमुख नाम है।



महत्वपूर्ण बिंदु –

आलोचना शब्द 'लुच' धातु से बना है। 'लुच' का अर्थ है– देखना, इसलिए किसी वस्तु या कृति की सम्यक व्याख्या, उसका मूल्यांकन आदि करना ही आलोचना है। संस्कृत में प्रचलित 'टीका– व्याख्या' और काव्य–सिद्धांत निरूपण के लिए भी आलोचना शब्द का प्रयोग कर लिया जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, आधुनिक आलोचना, संस्कृत के काव्य– सिद्धांत निरूपण से स्वतंत्र है। आलोचना का कार्य है– किसी साहित्यिक रचना की अच्छी तरह परीक्षा करके उसके रूप, गुण और अर्थव्यवस्था का निर्धारण करना।

हिंदी साहित्य और संवेदना के विकास के क्रम में उसके मूल्यांकन की प्रक्रिया में भी बदलाव होते रहे, जिसके कारण आलोचना नवीन मानदंडों व नवीन प्रवृत्तियों को आत्मसात करती रही। समकालीन आलोचना के विविध प्रकार है–

- **सौष्ठववादी या स्वच्छन्दतावादी** –

स्वच्छन्दतावादी दृष्टि की मूलभूत विशेषता साहित्य की जड़ता, कृत्रिमता, रूढ़ियों तथा अप्रासंगिकता होती हुई, लेखन परम्पराओं से विद्रोह है। स्वच्छंदतावादी आलोचना में वैयक्तिकता, आत्मसृजन, कल्पनाशीलता और स्वानुभूति को एक मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है। स्वच्छंदतावादी प्रभाव के कारण हिंदी आलोचना किसी बंधे ढांचे में नहीं, बल्कि विविध रूपों में प्रकट हुई है।

- **मार्क्सवादी आलोचना** –

हिंदी आलोचना को स्वच्छंदतावादी प्रभाव से बाहर निकालने का कार्य मार्क्सवादी आलोचकों ने किया। मार्क्सवादी आलोचना के क्षेत्र में भी हिंदी के कई आलोचकों का नाम लिया जाता है। डॉ. रामविलास शर्मा इसमें सबसे आगे आते है। उनके रचना 'प्रगति और परंपरा', 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ', 'आस्था और सौन्दर्य', 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' आदि उनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इनके उपरांत 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना' इनका महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इनके उपरांत शिवदान सिंह चौहान, प्रकाश चन्द्र गुप्त, नामवर सिंह, अमृतराय आदि इसी वर्ग के आलोचक है।

- **मनोविश्लेषणवादी आलोचना** –

मनोविश्लेषण दृष्टि या मनोविज्ञान के प्रभाव से हिंदी आलोचना में रचनाकारों के अंतरगन के विश्लेषण की प्रवृत्ति का उदय होने लगा था। अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी एवं देवराज उपाध्याय आदि इसी वर्ग के आलोचक हैं। अज्ञेय के 'त्रिशंकु' पर फ्रायड, एडलर एवं युंग के सिद्धांतों की छाप है।

- **रसवादी आलोचना** –

  संस्कृत काव्यशास्त्र की मूल दृष्टि रसवाड़ी ही रही, लेकिन आचार्य शुक्ल ने रसवाड़ी चिंतन को लोकमंगल से जोड़ा है। शुक्ल ने रसवादी चिंतन को लोकमंगल से जोड़कर हिंदी आलोचना की प्रवृत्ति को नई दिशा प्रदान की। नन्ददुलारे वाजपेयी और डॉ. नगेंद्र ने इस रसवादी परंपरा को आगे बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

- **नई समीक्षा** –

  नई समीक्षा विभिन्न दृष्टियों और प्रवृत्तियों की आलोचना है। समाहार रूप में नई समीक्षा आज के परिवेश में एक नई परंपरा निर्माण की आकांक्षी है।

- **अस्तित्ववादी आलोचना** –

  अस्तित्ववादी आलोचना में व्यक्ति की अस्मिता, उसके अस्तित्व पर संकट, क्षणिक अनुभव, उसके आंतरिक सत्य के उदघाटन की प्रवृत्ति विकसित हुई। अज्ञेय, डॉ. रघुवंश, धर्मवीर भारती आदि आलोचकों में अस्तित्ववादी प्रभाव देखा जा सकता है।

- **आधुनिकतावादी आलोचना** –

  इनके अंतर्गत साहित्य में वस्तु यथार्थ के ऊपर अनुभव की प्रामाणिकता, परंपरा और शास्त्रीय नियमों के स्थान पर प्रयोग और नवीनता, सत्यता के स्थान पर ईमानदारी और गतिशीलता, मानव चेतना एवं व्यापकता से अधिक गहराई पर बल देने की प्रवृत्ति सिखाती है।

अंत में कह सकते है कि आलोचना साहित्य की विकास यात्रा वर्तमान समय तक चल रही है और चलती रहेगी, आलोचना के माध्यम से हमें साहित्य जगत के कृतियों की मूल्यांकन के बारें पता चलता रहता है। जिससे साहित्य जगत का नए नए रूप देखने को मिल सकता है।



अपनी प्रगति जाँचें:

प्रश्न 1 – शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना बारें में संक्षिप्त रूप में लिखिए।

प्रश्न 2 – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों के बारे में चर्चा कीजिए।



13.5 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि निबंध और आलोचना साहित्य के उल्लेखनीय विधा है। आलोचना अथवा समलोचना से किसी विषय की लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, उसके गुण, दोष एवं उपयोगिता के बारें में विवेचन करता है, वहीं दूसरी ओर निबंध में रचनाकार किसी एक विषय के बारें में पूर्ण रूप से वर्णन करते है। दोनों विधाओं में हमे अंतर भी दिखाई देती है, जैसे-निबंध कोई भी व्यक्ति अपने तरीके से लिख सकते है लेकिन आलोचना करते समय उस व्यक्ति को उस विषय के बारें सम्पूर्ण तरीके से जानना चाहिए।

इन्हीं बिन्दुओं को ध्यान में रखकर कई निबंध और आलोचना हिंदी साहित्य में सृजन हो चुके है। भविष्य में भी इन सब को ध्यान में रखकर और रचना होंगे, यह हम उम्मीद कर सकते है।



13.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर - शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना की प्रमुख प्रवृत्तियों को रेखांकित कीजिए।

शुक्लोत्तर युग में हिन्दी आलोचना का बहुमुखी विकास हुआ है, अत: उसे आधुनिक हिन्दी समालोचना का प्रसार-काल या उत्कर्ष-काल कहा गया है। शुक्लजी के उपरान्त भी उनका प्रभाव आलोचना-जगत में कुछ समय तक बना रहा। अधिक जानने के लिए कृपया इकाई में देखें।

प्रश्न 2 का उत्तर - हजारी प्रसाद द्विवेदी के अन्य निबंध-संग्रह-अशोक के फूल, कल्पलता, विचार और वितर्क(1954),कुटज, कल्पतरु, नाखून क्यों बढ़ते हैं आदि हैं। इकाई में इसकी चर्चा विस्तारपूर्वक किया गया है।



13.7 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
3. लक्ष्मी लाल बैरागी, हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का इतिहास, संघी प्रकाशन, जयपुर।
4. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।



13.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. हिंदी निबंधों का उद्भव व विकास किस निबंधों के आधार पर हुआ ?
2. ''दिल्ली दरबार दर्पण'' किसकी रचना है ?
3. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के किसी एक निबंध का नाम लिखिए ?
4. 'छायावाद' किसकी आलोचना है ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. निबंध के उद्भव एवं विकास के बारे चर्चा कीजिए।
2. भारतेन्दु युगीन निबंध साहित्य के बारे में लिखिए।
3. निबंध साहित्य में शुक्ल के स्थान के बारे में चर्चा कीजिए।
4. आलोचना साहित्य के उद्भव विकास के बारे में चर्चा कीजिए।
5. समकालीन हिंदी साहित्य के बारे में चर्चा कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 14 गद्य साहित्य की अन्य विधाएं

इकाई की रूपरेखा

14.1 उद्देश्य
14.2 प्रस्तावना
14.3 संस्मरण तथा रेखाचित्र
14.4 जीवनी साहित्य
14.5 आत्मकथा
14.6 यात्रावृतांत
14.7 रिपोर्ताज
14.8 सारांश
14.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
14.10 अधिक जानने के लिए पढ़े
14.11 अभ्यास प्रश्न

14.1 उद्देश्य

इस अध्याय से आप जान सकेंगे-

- संस्मरण और रेखाचित्र के बारे में।
- जीवनी साहित्य के बारे में।
- आत्मकथा के बारे में।
- यात्रावृतांत के बारे में।
- रिपोर्ताज के बारे में।

14.2 प्रस्तावना

हिंदी गद्य की विधाओं के प्रमुखत: मुख्य और गौण दो भागों में विभक्त किया गया है। मुख्य विधाएँ कुछ इस प्रकार हैं- नाटक, एकांकी, निबंध, कहानी, उपन्यास, समालोचना और गौण विधाएँ कुछ इस प्रकार है- जीवनी, आत्मकथा, यात्रावृतांत, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज, डायरी आदि।

छायावादोत्तर काल में जीवनी, आत्मकथा, यात्रावृतांत, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज आदि का विकास हुआ। रिपोर्ताज इसी युग की देन है। अन्य विधाओं में भी कथ्य की विविधता और शैलीगत नूतन प्रयोगों की दिशा में इस युग के साहित्यकार में जो जागरूकता लक्षित होती है, वह पूर्ववर्ती लेखकों में नहीं मिलती, इसका कारण यह है कि जहां अब तक के लेखकों ने विधा प्रवर्तन के दायित्व- निर्वाह से संतोष का अनुभव किया, वहीं छायावादोत्तर काल में इन विधाओं को परिपुष्ट करना भी आवश्यक था और इसके लिए कथ्य और शिल्प

दोनों क्षेत्रों में नवीन संभावनाओं की खोज अपेक्षित होती है।

अब हम नीचे इन गद्य विधाओं के चर्चा करेंगे।

14.3 संस्मरण तथा रेखाचित्र

जब शब्दों के माध्यम से किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को उभारा जाता है तब उस रचना को रेखाचित्र कहते हैं। डॉ. गोविंद त्रिगुणायत के अनुसार, 'रेखाचित्र वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना का शब्दों द्वारा विनिर्मित वह मर्मस्पर्शी और भावमय रूप विधान है, जिसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि अपना निजीपन उँडेलकर प्राण प्रतिष्ठा कर देती है।' इस प्रकार रेखाचित्र में शब्दों का ऐसा प्रयोग किया जाता है, जिससे व्यक्ति का व्यक्तित्व उभरकर सामने आए। रेखाचित्र का वर्णय-विषय काल्पनिक न होकर वास्तविक होता है और उसकी आंतरिक एवं बाह्य विशेषताएँ कलात्मक ढंग से अभिव्यक्ति पाती है।

संस्मरण को अंग्रेजी में 'मेमोयर्स' कहते है। संस्मरण का संबंध लेखक की स्मृति से होता है। स्मृति में वही अंकित होता है जिसने लेखक की भावनाओं को प्रभावित किया हो। हिंदी संस्मरण लेखन का कार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के समय से प्रारंभ हुआ। द्विवेदी ने स्वयं 'अनुमोदन का अंत', 'सभा की सत्यता', 'विज्ञानाचार्य वसु का मंदिर' आदि संस्मरणात्मक लेखों की रचना की। संस्मरण व रेखाचित्र दोनों ही आधुनिक गद्य विधाएँ हैं।

डॉ. पद्मासिंह शर्मा के अनुसार, 'प्राय: प्रत्येक संस्मरण लेखक रेखाचित्र लेखक भी है और प्रत्येक रेखाचित्र लेखक संस्मरण लेखक भी है।' इसी कारण रेखाचित्र व संस्मरण में भेद कर पाना कठिन हो जाता है। रेखाचित्र का उद्भव शताब्दी के तीसरे दशक से प्रारम्भ हुआ। डॉ. हरवंशलाल शर्मा ने पंडित पद्मासिंह शर्मा को संस्मरण व रेखाचित्र दोनों का जनक माना है। हिंदी का प्रथम रेखाचित्र संग्रह है पद्मासिंह शर्मा कृत 'पदम्पराग'। इसमें संस्मरणात्मक निबंधों तथा रेखाचित्रों का संकलन है।

बालमुकुंद गुप्त ने प्रतापनारायण मिश्र पर एक संस्मरण लिखा है। इसी तरह आचार्य रामदेव ने स्वामी श्रद्धानंद पर वर्ष 1929 में तथा पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी ने श्रीधर पाठक पर संस्मरण लिखे हैं। हिंदी रेखाचित्र साहित्य में महादेवी वर्मा का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। रेखाचित्रकार के नामों में महादेवी वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। इनका नाम रेखाचित्र और संस्मरण दोनों में ही उल्लेखनीय है। इनकी उल्लेखनीय कृति 'स्मृति की रेखाएं' सन 1947 में प्रकाशित हुआ था। इनके और कुछ अन्यतम कृतियाँ कुछ इस प्रकार है- 'अतीत के चलचित्र' (1941), 'पथ के साथी' (1956), 'स्मारिका' (1971), 'मेरा परिवार' (1972) आदि। अपनी संवेदना को कवितापूर्ण शैली के माध्यम से मूर्त रूप देने में महादेवी वर्मा अत्यंत निपुण थे।

प्रकाशचन्द्र गुप्त भी इस विधा के उल्लेखनीय नाम है। इनके स्मृतिचित्र 'पुरानी स्मृतियाँ और नए स्केच' (1947) में संकलित हैं। पंडित श्रीराम शर्मा का प्रथम रेखाचित्र

संकलन का नाम है- 'जंगल के जीव' (1949) । जंगल के जीव में जंगली जानवरों के बारें उल्लेख किया गया है। इनके कुछ संकलनों का नाम है- 'वे कैसे जीते हैं' (1957), 'बोलती प्रतिमा' (1967) आदि।

बनरसीदास चतुर्वेदी का नाम इस विधा के एक प्रमुख नाम है। 'हमारे आराध्य' संस्मरण (1952), 'रेखाचित्र' (1952) इनके संस्मरणात्मक रेखाचित्र हैं। शिवपुजन सहाय के संस्मरण तथा रेखाचित्र 'वे दिन वे लोग' (1965) में संकलित हैं। सत्यवती मलिक के संस्मरण तथा रेखाचित्र 'अमिट रेखाएं' (1951) में संकलित है। देवेंद्र सत्यार्थी भावात्मक संस्मरण व रेखाचित्र लिखने में प्रसिद्ध हैं। उपेंद्रनाथ 'अश्क' के संस्मरण व रेखाचित्र 'रेखाएं व चित्र' (1955), 'मंटो मेरा दुश्मन' (1956) और 'ज्यादा अपनी कम पराई' (1959) में संकलित हैं।

हिंदी की प्रख्यात रसवादी आलोचक एवं निबंधकार डॉ. नगेंद्र का स्मृति चित्र है- 'चेतना के बिम्ब' (1967)। नगेंद्र ने इस संस्मरण में गंभीर विश्लेषण किया है। रामवृक्ष बेनीपुरी के 'माटी की मुरते', 'लालतारा', 'गेहूं और गुलाब', 'मील के पत्थर' आदि प्रमुख रेखाचित्र है।

इनके उपरांत माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह दिनकर, हरिवंशराय बच्चन आदि का नाम प्रसिद्ध है। हिंदी रेखाचित्र एवं संस्मरण विधा के अंतर्गत पर्याप्त कार्य हुआ है। पत्र- पत्रिकाओं में इस विधा से संबंधित लेख प्रकाशित होते आ रहे है।

रेखाचित्र के प्रमुख तत्व है - वैयक्तिकता, संवेदनशीलता, यथार्थ अनुभूति, तटस्थता, सूक्ष्म निरीक्षण और उद्देश्य।

इसी प्रकार संस्मरण के प्रमुख आठ तत्व हैं- अतीत की स्मृति, आत्मीय एवं श्रद्धापूर्ण अंतरंग संबंध, प्रामाणिकता, वैयक्तिकता, जीवन के खंड विशेष का चित्रण, चित्रात्मकता, कथात्मकता, और तटस्थता।

14.4 जीवनी साहित्य

जीवनी भी महान व्यक्ति का सम्पूर्ण विवरण क्रमशः महत्वपूर्ण घटनाओं के माध्यम से किसी अन्य लेखक द्वारा लिखा जाना जीवनी कहलाती है।

हिंदी में जीवनी लेखन 19वीं शताब्दी से आरंभ हुआ था। सर्वप्रथम बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री ने 1893 ई. में मीराबाई का जीवन चरित्र लिखा था। इसके बाद भारतेन्दु युग से जीवनी लिखने का क्रमबंध इतिहास मिलता है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने कालिदास, रामानुज, जयदेव, सूरदास, शंकराचार्य, बल्लभाचार्य आदि की जीवनियाँ लिखी। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी कई महापुरुषों की जीवनियाँ लिखी, जो सुकवि संकीर्तन, प्राचीन पंडित और कवि तथा चरित्र-चर्चा नामक ग्रन्थों में संकलित है। छायावाद युग में जीवनी लेखन की परंपरा काफी समृद्ध रही। इस युग प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेताओं के जीवन वृत्तों में गोकुल चन्द्र शर्मा 'गांधी गौरव' आदि उल्लेखनीय हैं।

छायावाद युग में ऐतिहासिक विभूतियों पर भी जीवनियाँ लिखी गई। रामनरेश

त्रिपाठी ने 'पृथ्वीराज चौहान', संपूर्णानन्द ने 'सम्राट हर्षवर्धन', प्रेमचंद ने 'दुर्गादास', कौशल्यायन ने 'भगवान बुद्ध', यदुनाथ सरकार ने शिवाजी की जीवनी आदि महत्वपूर्ण जीवनियाँ लिखी हैं।

महात्मा गांधी की जीवनी काफी रचनाकारों ने लिखी है, उनमें से घनश्यामदास बिड़ला कृत 'बापू', काका कालेलकार कृत 'बापू की झकियाँ', राजेंद्र प्रसाद के 'बापू के कदमों में', जैनेन्द्र कुमार के 'अकाल पुरुष गांधी' आदि उल्लेखनीय कृति है।

विशिष्ट साहित्यकारों के जीवन वृत्तों में बाबू राधाकृष्ण दास ने 'भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र', ब्रजरत्न दास ने 'भारतेन्दु हरिश्चंद्र', शिवनंदन सहाय ने 'हरिश्चंद्र', गंगा प्रसाद पाण्डेय ने 'महाप्राण निराला', शिवरानी देवी ने 'प्रेमचंद घर में', उमेशचन्द्र मिश्र ने 'विश्व कवि रवीन्द्रनाथ', अमृतराय ने 'प्रेमचंद : कलम का सिपाही', रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य साधना' अत्यंत महत्वपूर्ण जीवनियों की रचना की हैं।

विष्णु प्रभाकर ने सन् 1974 में 'आवारा मसीहा' नामक जीवनी की रचना की थी। इसमें इन्होंने शरतचंद्र के जीवन से संबंधित सम्पूर्ण जीवन की उपलब्ध सामग्री का अनुशीलन करके उनकी प्रतिभा का पुर्नसृजन किया है। इसी तरह शिवसागर मिश्र ने 'दिनकर : एक सहज पुरुष' में दिनकर के मानवीय पक्ष को उभारने का प्रयास किया। शोभाकांत ने 'बाबूजी' में नागार्जुन के जीवन के अछूते प्रसंगों को उभारने का प्रयास किया है।

14.5 आत्मकथा

जब कोई महान व्यक्ति अपने जीवन की सम्पूर्ण घटनाओं का क्रमश: विवरण स्वयं लिखता है तो ऐसी विधा आत्मकथा कहलाती है। किसी भी व्यक्ति की आत्मकथा से उसकी विचारधारा, दृष्टिकोण और युगीन परिस्थितियों का भी बोध हो जाता है।

हिन्दी की प्रथम आत्मकथा बनारसीदास कृत 'अर्ध कथानक' है। अर्ध कथानक में उन्होंने अपने जीवन के पचपन वर्षों का सच्चा विवरण प्रस्तुत किया है। इनके बाद सत्यानंद अग्निहोत्री ने 'मुझमें देव जीवन का विकास', स्वामी दयानन्द ने 'जीवन- चरित्र', मुंशी प्रेमचंद ने अपनी संक्षिप्त आत्मकथा 'जीवनसार', प्रसाद ने अपना आत्मकथा छायावादी शैली में प्रस्तुत किया।

हिंदी की प्रथम महिला आत्मकथा लेखिका जानकी देवी बजाज हैं। 'मेरी जीवन यात्रा' (1956) में इन्होंने अपने बचपन से लेकर पति की मृत्यु तक के जीवन की घटनाओं को निबंध किया है। 'मेरा जीवन प्रवाह' में वियोगी हरि ने परिनिष्ठित भाषा शैली में अपना आत्मचरित प्रस्तुत किया है। डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने मूलत: हिंदी में अपनी आत्मकथा 'सत्य की खोज' लिखी थी। बाबू गुलाबराय ने 'मेरी असफलताएँ' में अपने जीवन का तटस्थ भाव से चित्रण किया है।

राहुल सांकृत्यायन ने 'मेरी जीवन यात्रा' अपने विद्रोही स्वभाव, यायावरी वृत्ति एवं विद्याव्यसन की चर्चा की है। यशपाल की आत्मकथा 'सिंहावलोकन' में उनके राजनीतिक विचारों की प्रमुखता है। कमलेश्वर की आत्मकथा 'गर्दिश के दिन' (1980), 'जो मैंने

जिया' (1992), 'यादों का चिराग' (1997), और 'जलती हुई नदी' (1999), नामक चार खंडों में प्रकाशित है। रामदारश मिश्र की आत्मकथा 'सहचर है समय' (1991), हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा है 'स्मृति- यात्रा- यज्ञ', इनकी आत्मकथाओं को चार विभागों में विभक्त किया गया है- 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' (1969), 'नीड़ का निर्माण फिर' (1976), 'बसेरे से दूर' (1978), 'दशद्वार से सोपान तक' (1985) आदि।

दलित लेखकों में मोहनदास नैमिषराय की 'अपने अपने पिंजरे' और ओमप्रकाश वाल्मीकि के 'जूठन' बहू चर्चित आत्मकथाएं है। प्रसिद्ध लेखिका तसलीमा नसरीन की आत्मकथाओं को सात खंडों में विभक्त किया गया है- 'मेरे बचपन के दिन', 'उत्तल हवा', 'द्विखंडित', 'वे अंधेरे दिन', 'मुझे घर ले चलो', 'नहीं कहीं कुछ भी नहीं' (2013), 'निर्वासन' (2017)।

इनके उपरांत अनेक लेखकों ने अपनी आत्मकथाएं लिखी है। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं- डॉ. नगेंद्र, भीष्म साहनी, बाबू श्यामसुंदर दास, सेठ गोविन्ददास, विष्णु चन्द्र शर्मा, पाण्डेय वेचन शर्मा 'उग्र', यशपाल आदि।

14.6 यात्रावृतांत

यात्रा करना मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्ति है। मानव के विकास की गाथा में यायावरी का महत्वपूर्ण योगदान है। मनुष्य कभी न कभी, कोई न कोई यात्रा अवश्य करता है लेकिन सृजनात्मक प्रतिभा के धनी अपने यात्रा अनुभवों को पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत कर यात्रा वृतांत की रचना करने में सक्षम हो जाते है। जब कोई लेखक अपने द्वारा की गई किसी यात्रा वास्तविक, कलात्मक या साहित्यिक वर्णन करता है तो ऐसी रचना को यात्रावृतांत या यात्रा साहित्य कहते है।

यात्रा साहित्य का उद्देश्य है लेखक के यात्रा अनुभवों को पाठकों के साथ बाँटना और पाठकों को उन स्थानों की यात्रा के लिए प्रेरित करना है। हिन्दी साहित्य में अन्य गद्य-विधाओं की भाँति ही भारतेन्दु युग से यात्रा साहित्य का प्रारम्भ हुआ यह माना जा सकता है।

भारतेन्दु ने 'सरयू पार की यात्रा', 'मेहंदावल की यात्रा', 'लखनऊ की यात्रा' आदि यात्रा वृतांन्तों का बड़ा रोचक और सजीव वर्णन किया है। बालकृष्ण भट्ट की 'गया यात्रा' और प्रताप नारायण मिश्र की 'विलायत यात्रा' क्रमशः हिंदी प्रदीप के मार्च, 1894 के तथा नवंबर, 1897 के अंकों में प्रकाशित हुए।

द्विवेदी युग में देवी प्रसाद खत्री कृत 'बद्रिकाश्रम यात्रा', गोपालराम गहमरी कृत लंका यात्रा का विवरण, ठाकुर. गदाधर सिंह कृत 'चीन में तेरह मास' तथा 'हमारी एडवर्ड तिलक यात्रा' उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

छायावाद युग में राम नारायण मिश्र ने 'यूरोप में छह मास' (1932) में यूरोप के दर्शनीय स्थानों के रोचक वर्णन के साथ वहाँ के रहन सहन, शिक्षा पद्धति आदि का भी उल्लेख किया था । छायावाद के अन्य एक प्रमुख लेखक है- सत्यदेव परिव्राजक। उनके

कुछ यात्रावृतांत है- 'मेरी जीवन यात्रा' (1926), 'यात्री मित्र' (1936), 'यूरोप की सुखद स्मृतियाँ' (1937), 'ज्ञान के उद्यान में' (1937), 'नई दुनिया के मेरे अद्भुत कहानी' (1937) आदि।

राहुल सांकृत्यायन का नाम यात्रावृतांत साहित्य के एक प्रमुख नाम है। उनकी यात्रावृतांत रचनाएँ कुछ इस प्रकार हैं- 'तिब्बत में सवा वर्ष' (1933), 'मेरी यूरोप यात्रा' (1935), 'मेरी तिब्बत यात्रा' (1937), 'मेरी लद्दाख यात्रा' (1939), 'किन्नर देश में' (1948), 'रूस में पच्चीस मास' (1952) आदि। रामवृक्ष बेनीपुरी के कुछ रचनाएँ इस प्रकार- 'पैरों में पंख बाँधकर' (1952), 'उड़ते चलो उड़ते चलो' (1954) आदि। यशपाल के कुछ रचनाएँ हैं- 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' (1953) आदि। अज्ञेय के उल्लेखनीय यात्रावृतांत कुछ इस प्रकार हैं- 'अरे यायावर रहेगा याद', 'एक बूँद सहसा उछली' (1960) आदि। 'देश-विदेश' (1957) और 'मेरी यात्राएं' (1970) रामधारी सिंह 'दिनकर' के अन्यतम यात्रावृतांत है। विष्णु प्रभाकर ने 'हँसते निर्झर : दहकती भट्टी' (1966) में देश- विदेश से संबन्धित इक्कीस यात्रावृत्तों को संकलित किया है।

'अप्रवासी की यात्राएं' डॉ. नगेंद्र ने जापान, अमेरिका, यूरोप आदि देशों के शैक्षिक जीवन का चित्रण किया है। 'अमेरिकी विश्वविद्यालयों में हिंदी' इस यात्रावृत्त का सर्वाधिक ज्ञानवर्धक प्रकरण है। सृजनात्मक यात्रावृत्तों के भीतर मोहन राकेश के कृत 'आखिरी चट्टान तक' उल्लेखनीय कृति है। हिमांशु जोशी ने अंडमान निकोबार की सेल्यूलर जेल के बारें में 'यातना शिविर' नामक रचना में वर्णन किया है। 'कितना अकेला आकाश' में नरेश मेहता ने युगोस्लाविया और अन्य यूरोपीय लोगों की मानसिकता का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है।

14.7 रिपोर्ताज

रिपोर्ताज फ्रांसीसी भाषा का शब्द है। जिस रचना में वर्ण्य विषय का आँखों देखा तथा कानों सुना ऐसा विवरण प्रस्तुत किया जाता है, जिससे पाठक का हृदय भाव-विभोर हो जाए और वह उसे भूल न सके उसे रिपोर्ताज कहते है। रिपोर्ताज में तथ्यों को कलात्मक व प्रभावी ढंग से व्यक्त किया जाता है। रिपोर्ताज का प्रारम्भ 1939 ई. में हुआ था । हिंदी रिपोर्ताज लेखन की परंपरा का शुरुआत शिवदान सिंह चौहान की 'लक्ष्मीपुरा' (1938) हुआ था । इनके उपरांत कुछ अन्य रिपोर्ताज इस प्रकार हैं-

हंस पत्रिका का सर्वाधिक योगदान रिपोर्ताज के प्रचार- प्रसार में रहा है। इसी पत्रिका में शिवदान सिंह चौहान ने 'मौत के खिलाफ जिंदगी की लड़ाई' शीर्षक रिपोर्ताज लिखा था जिसमें स्वतंत्रता से पूर्व देश की स्थिति का विवरण है। हंस पत्रिका में 'समाचार और विचार' तथा 'अपना देश' स्तंभों के अंतर्गत विभिन्न लेखकों के रिपोर्ताज प्रकाशित होते रहे हैं। 'विशाल भारत' में रांगेय राघव के 'अदम्य जीवन' नामक रिपोर्ताज प्रकाशित होते हैं। इस रचना में द्वितीय विश्वयुद्ध के अंतिम दिनों में भयंकर अकाल पड़ा और महामारी का प्रकोप भी हुआ था, उसका वर्णन सम्पूर्ण रूप से किया गया है।

प्रकाश चंद्र गुप्त के 'अल्मोड़े का बाजार', 'बंगाल का अकाल' तथा 'स्वराज्य भवन' आदि रिपोर्ताज उल्लेखनीय कृति है। जगदीश चंद्र जैन ने डायरी शैली में रिपोर्ताज लिखे, जो 'पेकिंग की डायरी' नाम से प्रकाशित हुए है। रामनारायण उपाध्याय ने व्यंग्यात्मक शैली में 'गरीब और अमीर पुस्तकें' नामक रिपोर्ताज की रचना की है।

इनके अतिरिक्त हिंदी के कुछ उल्लेखनीय कृतियाँ कुछ इस प्रकार हैं- प्रभाकर माचवे का 'प्रभाकर जब पाताल गए', लक्ष्मी चंद्र जैन का 'कागज की किश्तियाँ', कामता प्रसाद सिंह का 'मैं छोटा नागपूर में हूँ', भदंत आनंद का 'देश की मिट्टी बुलाती है', धर्मवीर भारती का 'युद्धयात्रा' तथा शमशेर बहादुर सिंह का 'प्लांट का मोर्चा' आदि ।



अपनी प्रगति जाँचें

प्रश्न 1 – हिंदी साहित्य में रिपोर्ताज के सृजन के बारे में बताइए।

प्रश्न 2 – यात्रा वृतांत में राहुल सांकृत्यान की देन पर चर्चा कीजिए।



14.8 सारांश

हिंदी साहित्य के मुख्य विधाओं के तरह ही इन गौण विधाओं का आवश्यकता भी इस साहित्य जगत में उल्लेखनीय है। उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी की तरह ही रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा आदि प्रमुख साहित्यिक विधा है। हिंदी साहित्यकारों ने इन विधाओं को लेकर अपना सृजनात्मक मनोवृत्ति को सदा जगा के रखा। मुख्य विधा के रचनाकारों ने इन विधाओं में भी साहित्य सृजन की और साथ ही इन विधाओं के प्रारम्भ के साथ साथ अनेक नए रचनाकारों का भी उद्भव होने लगा।



14.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर – हिन्दी में रिपोर्ताज लेखन की परम्परा 1940 के आस-पास शुरू हुई। माना जाता है कि हिन्दी का पहला रिपोर्ताज शिवदान सिंह चौहान ने 'लक्ष्मीपुर' नाम से लिखा था। जिसका प्रकाशन सुमित्रानंदन के संपादन में निकालने वाली 'रुपाभ' (मासिक) पत्रिका के दिसम्बर, 1938 के अंक में हुआ था। अधिक जानने के लिए कृपया इकाई को ध्यान से पढ़ें।

प्रश्न 2 का उत्तर – यात्रा साहित्य में महत्वपूर्ण लेखक राहुल जी रहे है। उनके यात्रा वृतांत

में यात्रा में आने वाली कठिनाइयों के साथ उस जगह की प्राकृतिक सम्पदा, उसका आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन और इतिहास अन्वेषण का तत्व समाहित होता है। इकाई में इसकी चर्चा विस्तारपूर्वक प्रस्तुत है।



14.10 अधिक जानने के लिए पढ़े

1. हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेन्द्र (सम्पा). नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी.
3. हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का इतिहास- लक्ष्मी लाल बैरागी, संघी प्रकाशन, जयपुर।
4. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।



14.11 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. हिंदी का प्रथम रेखाचित्र संग्रह कौन सा है?
2. 'स्मृति की रेखाएं' किसकी रचना है?
3. 'आवारा मसीहा' नामक जीवनी किसने लिखी थी?
4. 'हिंदी के प्रथम महिला आत्मकथा' लेखिका कौन है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. संस्मरण और रेखाचित्र क्या है-स्पष्ट कीजिए।
2. जीवनी साहित्य के बारे चर्चा कीजिए।
3. आत्मकथा क्या है? एक आलोचना प्रस्तुत कीजिए।
4. आत्मकथा के सन्दर्भ में हरिवंश राय बच्चन के बारे आलोचना कीजिए।

*** ***** ***